

बाल निर्माण की कहानियाँ

१४

बाल निर्माण की कहानियाँ

(भाग-१४)



लेखिका

डॉ० आशा 'सरसिज'



प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-३

दूरभाष : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो० ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स : (०५६५) २५३०२००



पुनरावृत्ति सन्-२०१४ मूल्य ११) रुपए

प्रकाशक
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-३



लेखिका
डॉ० आशा 'सरसिज'



मूल्य
११.०० रुपए



पुनरावृत्ति
सन्-२०१४



मुद्रक
युग निर्माण योजना प्रेस
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-३

बुद्धिमान बेटा

उस दिन स्कूल के सारे बच्चे झुग्गी-झोंपड़ी वाली बस्ती में गए थे। वे अपने साथ अपने खिलौने भी लेते गए। ऐसे खिलौने जो अब उनके लिए उपयोगी नहीं थे। मणि भी अपने कई स्वचालित खिलौने लाया था। उसके पास खिलौनों का तो भंडार था। अपने साथ लाए खिलौने वह बाँट चुका था। अब उसके पास रह गई थी, क्रिकेट की गेंद और बल्ला, जिसके लिए वह किसी सुपात्र को खोज रहा था। सहसा ही उसकी निगाह अपने ही समवयस्क ११-१२ वर्ष के एक किशोर पर पड़ी, जो सबसे दूर खड़ा यह सब देख रहा था। उसके कपड़ों से स्पष्ट हो रहा था कि वह भी इसी बस्ती का रहने वाला है। बस ! गेंद-बल्ला ठीक रहेगा। ऐसा मन ही मन कहते हुए मणि उसकी ओर बढ़ा।

'लो ! यह तुम्हारे लिए है।' मणि ने उसकी ओर गेंद-बल्ला बढ़ाते हुए कहा।

किशोर चुप खड़ा रहा। मणि ने फिर अपनी बात दोहराई। वह किशोर कुछ क्षण उसे घूरता रहा। फिर तीखे स्वर में बोला—'पाप और रिश्वत की कमाई अपने पास ही रखो।'

'क्या मतलब ?' मणि ने तेज स्वर में पूछा।

'मतलब यह कि तुम्हारे पूज्य पिताजी गरीबों को सताकर रिश्वत लेकर तुम्हारे लिए खुशी बटोरते हैं। पर ध्यान रखना, उन सब गरीबों की आहें कभी न कभी तो तुम्हें लगेंगी ही।' वह किशोर कह रहा था।

'इस बात का कोई प्रमाण है, तुम्हारे पास?' मणि ने उससे तुरंत पूछा।

'प्रमाण मैं स्वयं हूँ।' वह किशोर बोला।

'कैसे?' मणि उत्सुकता से पूछने लगा।

'जानना चाहते हो तो बताता हूँ, तुम्हें—मैं छोटा था तभी मेरे पिताजी मर गए थे। उनकी जो दुकान थी वह माँ ने किराए पर उठा दी। उसी किराए से बड़ी कठिनाई से हमारा पालन-पोषण हुआ। अब बड़े होकर मैंने सोचा कि मैं दुकान कर लूँगा तो घर का कष्ट कुछ कम होगा। दस-बारह वर्ष पहले जितना किराया तय हुआ था, अब भी उतना ही मिलता है और उसमें इस बढ़ती महँगाई में गुजारा होना बड़ा कठिन है। दुकान खाली करने के लिए मैंने नोटिस दिया, वकील किया।' नियमानुसार दुकान खाली हो जानी चाहिए थी, पर विश्वसनीय सूत्रों से सुना है कि तुम्हारे पिताजी ने रिश्वत में मोटी रकम हमारे किराएदार से ले ली है और दुकान न खाली करने का फैसला सुना दिया है। हमारा बहुत पैसा बरबाद हुआ। समझ में नहीं आता मैं क्या करूँ? पढ़ने के लिए मेरे पास पैसा नहीं है। फिर पढ़-लिखकर मुझे काम मिल जाएगा, यह भी कोई निश्चित नहीं।' वह किशोर बड़े ही दुखी मन से कह रहा था।

'तुम्हें अच्छी तरह से पता है कि मेरे ही पिताजी ने तुम्हारा फैसला किया है?' मणि ने पूछा।

'हाँ ! मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि वह तुम्हारे ही पिताजी हैं। मैंने कई बार तुम्हें तुम्हारे पिताजी के साथ देखा है।' किशोर कह रहा था।

मणि यह सुनकर खिन्न मन से चुपचाप वहाँ से लौट पड़ा। पिता की रिश्वतखोरी को लेकर और भी कई बार वह साथियों से अपमानित हो चुका था। यही नहीं उसके पड़ोसी और रिश्तेदार भी पीठ पीछे जो बुराई करते थे, उसे भी मणि ने एक-दो बार सुना था। उसका मन ग्लानि से भर उठा। आज तो उसके सामने स्पष्ट हो

गया था कि पिताजी किस प्रकार गरीबों के आँसुओं से उसके वैभव की सामग्री खरीदते हैं।

घर जाकर मणि निढाल सा पड़ गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे वह पिताजी को रोके। न्याय की कुरसी पर बैठकर भी जो अन्याय करे उसे क्या कहा जाए? मणि ने संकल्प किया कि अब इस अन्याय का प्रतिकार करना ही होगा।

मणि ने कई बार माँ को पिताजी के इस काम का विरोध करते और उन्हें समझाते हुए सुना था। अतएव उसने माँ की सहायता लेने की बात सोची। उसने माँ को उस बालक की पूरी-पूरी सारी बात भी बता दी। मणि ने माँ को अपनी पूरी योजना भी समझा दी।

रात को भोजन के समय जज साहब ने कहा—'आज मणि कहाँ पर है?'

'हम खाते हैं।' मणि की माँ ने उत्तर दिया।

सोने के समय तक भी मणि न आया तो जज साहब ने फिर उसकी माँ से कहा—'आखिर मणि गया कहाँ है? कुछ तो कहकर गया होगा।'

उसकी माँ ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—'अब यह यहाँ नहीं रहेगा।'

'क्या मतलब?' जज साहब कुछ न समझे और बड़े ही आश्चर्य से बोले।

मणि की माँ ने चुपचाप वह पत्र लाकर उन्हें पकड़ा दिया, जो मणि उनके लिए रख गया था। उन्होंने जल्दी से उसे खोला। उसमें मणि ने पिता से बड़े ही विनम्र शब्दों में निवेदन किया था कि वह घर छोड़कर सदा के लिए जा रहा है। कारण कि वे रिश्वत लेकर गरीबों और असहायों को अकारण सजा देते हैं। उनकी आहों से वैभव की जो चीजें खरीदते हैं, उनके लिए उसकी अंतरात्मा उसे धिक्कारती है। इस बात को लेकर साथी भी जब-तब उस पर व्यंग

कसते रहते हैं। उसने उस किशोर की कथा भी लिख दी थी जिससे कि वह कल मिला था।

'लेकिन वह गया कहाँ है?' जज साहब ने उद्विग्नता के साथ पत्नी से पूछा।

उन्होंने बताया कि उसका एक मित्र किराए का कमरा लेकर रह रहा है। मणि भी उसी के साथ रहने चला गया है। वह कह रहा था कि ट्यूशन करके अपनी पढ़ाई का खरच निकालेगा।

'जाओ ! जाकर उसे लौटा लाओ।' जज साहब ने पत्नी को आदेश दिया।

'आप जानते हैं कि मणि कितना जिद्दी है। जब तक कि उसकी बात पूरी नहीं होगी, तब तक वह कभी नहीं आएगा?' पत्नी ने उत्तर दिया।

जज साहब कुछ देर सोचते हुए इधर-उधर टहलते रहे। उस पितृहीन बालक का असहाय चेहरा उनकी आँखों के सामने घूमने लगा। उसकी बातें उनके कानों में गूँजने लगीं। यही नहीं और भी अनेक चेहरे उनकी आँखों के आगे घूम गए, जिनके विरुद्ध उन्होंने न्याय की कुरसी पर बैठकर अन्याय किया था। उनका मन भारी हो गया, वे कुछ देर चुपचाप कुरसी पर बैठे रहे। फिर पत्नी की ओर मुड़कर बोले—'सुनो ! मैंने सोच लिया है कि अब मैं रिश्वत नहीं लूँगा।'

'अच्छी तरह सोच-समझकर निर्णय लीजिए, जिससे बाद में आपको क्षोभ न हो।' मणि की माँ ने कहा।

मणि की माँ की आँखें खुशी से चमक उठीं। उनकी दो अभिलाषाएँ एक साथ जो पूरी हो रही थीं। बेटा तो घर आ ही जाएगा, साथ ही पति जिन्हें समझा-समझाकर वह हार गई थी, आज वे सचाई और ईमानदारी के रास्ते पर आ गए थे।



संकल्प का बल

'पकड़ो', 'मारो', 'बचकर न जाने पाए', 'पुलिस को दे दो', 'कपड़े उतारकर जंगल में छोड़ दो' न जाने कितनी आवाजें थीं जो बस के कोने-कोने से आ रही थीं। चार-पाँच व्यक्ति लगातार ही रमेश को थप्पड़ और घूँसे मारे जा रहे थे। रमेश एकदम सकपका गया था। वैसे भी यह चौथा मौका था, जब उसने जेब काटी थी। दूसरी बार भी वह पकड़ा गया था, पर जल्दी ही अपने को निर्दोष सिद्ध कर भाग छूटा था। आज जैसी धुनाई, आज जैसा अपमान तो कभी भी नहीं हुआ था। आज तो लगता था जैसे लोग उसे मार ही डालेंगे। भय और अपमान से उसका चेहरा फक पड़ गया था। उसके साथ चढ़ने वाले दोनों साथी मौका पाकर खिसक लिए थे। बस में वह अकेला ही रह गया था। वह गिड़गिड़ा रहा था, पर उसकी बात सुनने की फुरसत भी किसे थी और होती भी क्यों? क्योंकि वह रंगे हाथों जो पकड़ा गया था। रमेश घबड़ा रहा था कि आज तो न जाने क्या बीतेगी? कोई सवारी उसे थाने में देने की कह रही थी तो कोई इसे बेकार बता रही थी। थाने के आगे बस रुकी तो रमेश ने उतरने के लिए पैर बढ़ाए। बातें यहीं तक रह जाएँ, तब भी गनीमत थी, पर पीछे खड़े दो युवकों ने उसका कॉलर जोर से खींचते हुए दो-दो थप्पड़ उसके गाल पर लगाए और बोले—'तुझे तेरे घर नहीं छोड़ेंगे।' अनेक सवारियों का मत था कि इस जबकतरे को सबक सिखाया जाए। इसके कपड़े उतार कर, पैसे छीनकर जंगल में छोड़ा जाए। अंत में उन्होंने किया भी वही। शहर से लगभग ३० किलोमीटर दूर जंगल में ड्राईवर से बस रुकवाई, जोश में भरी दस-बारह सवारियों ने थप्पड़-घूसों से अंतिम बार उसकी पिटाई की और तब तक न छोड़ा जब तक कि उसके मुँह से खून निकलना आरंभ न हो गया। कुछ व्यक्तियों ने उसके कपड़े उतार

लिए, केवल एक अंडरवीयर उसके बदन पर रहने दिया। वह भी यह कहकर—'इसे बाद में उतारेंगे। तुझे शरम नहीं है तो हमें तो है।' कुछ व्यक्तियों ने अपनी जेबों से पैन निकाले। एक के पास स्याही वाला पैन था तो उसने उसे खोलकर रमेश का मुँह काला रंग दिया। दूसरों के पास रिफिल वाले पैन थे, उन्होंने उसके मुँह, पेट, सीना, बाँह आदि पर चोर, सावधान, जेबकतरा आदि शब्द लिख दिए। रमेश तनिक भी प्रतिरोध नहीं कर पाया, क्योंकि कई व्यक्तियों ने उसके हाथ पकड़ रखे थे। जब वे सब कार्य करके संतुष्ट हो गए तब उन्होंने उसे धक्का देते हुए बस से उतार दिया। वह नीचे सड़क पर जाकर औंधे मुँह गिर पड़ा, तब एक वृद्ध सज्जन का हृदय पसीज उठा। उन्होंने बीच-बिचाव करते हुए कहा—'अब रहने दो, इसे बहुत दंड मिल गया। बस चलवाओ' उनके बहुत ही कहने पर उसे छोड़ा गया।

बस चली गई, उसके कपड़े-पैसे भी चले गए। उस शीत ऋतु में जंगल में खड़ा काँपने लगा। उसका इतना अपमान हुआ था कि उसे लग रहा था कि धरती फट जाए और वह उसमें समा जाए। वह वहाँ बहुत देर बैठा फूट-फूटकर रोता रहा। अपने कुकर्म के प्रति घोर विरक्ति उसके मन में उभरने लगी। उसने संकल्प किया कि जीवित रहते फिर कभी यह कार्य नहीं करेगा। वह भी समाज का एक सम्मानित नागरिक बनेगा।

इस समय रमेश के सामने सबसे बड़ी समस्या थी घर जाने की। बिना कपड़े पहने वह बस्ती में कैसे जाए? वहाँ भी जो अपमान झेलना पड़ेगा, उसकी बात सोचकर उसकी आँखों से आँसू बह चले। बहुत देर तक रोने के बाद मन कुछ हलका हुआ। उसे विगत घटनाएँ एक-एक करके याद आने लगीं। बचपन में माँ की मृत्यु के बाद कैसे वह अकेला पड़ गया था। कुछ समय बाद दूसरा विवाह कर पिता तो अपना दुःख भूल गए थे, परंतु उस पर सौतेली माँ के अत्याचार निरंतर बढ़ते चले गए थे। पिता को यह सब देखने

का न समय था और न रुचि। फलतः अंतर्मुखी रमेश विद्रोही बनता चला गया। वह कॉलेज में गलत लड़कों की संगति में पड़ गया था। कक्षा छोड़कर भागना, कक्षा से रुपये-किताबें चुरा लेना, सिनेमा देखना, सिगरेट-दारू पीना, इन सभी कार्यों में वह कुशल हो गया था। अब कुछ दिनों से नया धंधा शुरू किया था—जेब काटने का। तीन-चार साथी मिलकर यह कार्य करते थे। रमेश को आज रह-रहकर याद आ रहा था कि उसके स्कूल के सुधीर मास्टर साहब ने कई बार अकेले में बुलाकर समझाया था कि वह गलत लड़कों की संगति छोड़कर पढ़ाई में मन लगाए, जिससे वह अच्छा नागरिक बन सके। रमेश उनके सामने तो चुप रहता था, परंतु पीछे उनका मजाक बनाता था। मास्टर साहब की पत्नी उसकी माँ की सहेली थीं। उन्होंने घर जाकर अपनी पत्नी से भी कुछ कहा था, क्योंकि जब भी वह जाता था, वे भी इसी प्रकार उसे समझाया करती थीं। रमेश ने धीरे-धीरे वहाँ जाना ही छोड़ दिया था।

सहसा ही रमेश को अपनी मृत माँ की याद आ गई। 'वे आज होतीं तो..........' सोचकर रमेश की आँखों में आँसू भर आए। वह विचारने लगा कि क्या वह उसी का बेटा है जिसे धर्म ग्रंथों की कथा सुना-सुनाकर अच्छा बनने की प्रेरणा दिया करती थीं। जो सदा यह कहा करती थीं कि मेरा राजा बेटा बड़ा होकर बहुत अच्छा बनेगा। रमेश को लगा जैसे उसकी माँ उसके पास खड़े होकर उसे धिक्कार रही है, फिर से उसे सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे रही है। कुछ देर बाद रमेश वहाँ आत्मविस्मृत सा बैठा रहा। जब वह पूरी तरह चेतन हुआ तो उसने पाया कि उसके अंतर्मन में एकाएक परिवर्तन हो चुका है। कुछ क्षण ही होते हैं जो व्यक्तित्व बदल देते हैं, अन्यथा मास और वर्ष भी कुछ नहीं कर पाते। घर की वही कटु स्थितियाँ जिन पर वह निषेधात्मक दृष्टिकोण से सोच-सोचकर विद्रोही बन गया था, उन पर अब वह विधेयात्मक विचार करने लगा। वह सोचने लगा—'जीवन में माँ का प्यार नहीं मिला तो क्या किया जा

सकता है? पिता का संरक्षण तो है न। कितने ऐसे अभागे बच्चे हैं, जिन्हें वह भी प्राप्त नहीं है। जो पढ़ना चाहते हुए भी पढ़ नहीं पाते, जिन्हें पेट भरने के लिए भी कठोर श्रम करना पड़ता है।'

दृष्टिकोण के परिवर्तन से जीवन बदल जाता है। रमेश का जीवन भी बहुत कुछ आज बदल गया था। उसने अपनी मृत माँ को मन ही मन श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर यह संकल्प किया कि वह मन लगाकर पढ़ाई करेगा। बुरे लड़कों की बुरी संगति और बुरी आदतें बिलकुल छोड़ देगा।

साँझ होने लगी थी। रमेश उठा और पानी की खोज में निकल पड़ा। थोड़ी दूर चलने के बाद एक पोखर मिल गई। वहाँ उसने अपना शरीर रगड़-रगड़कर धोया फिर उसने घर की राह ली। कुछ दूर तक तो वह पैदल चलता रहा। थोड़ी देर बाद उसे एक बैलगाड़ी आती दीखी। रमेश ने अनुनय-विनय करके उसको रोक लिया और उसमें बैठ गया। कपड़े और सामान डाकुओं ने उससे छीन लिया है, ऐसी झूठी कहानी बनाकर रमेश को उन्हें सुनानी पड़ी, दया करके एक व्यक्ति ने अपनी पुरानी चादर भी रमेश को तन ढकने के लिए दे दी। रमेश ने उस व्यक्ति के प्रति बहुत आभार व्यक्त किया। नगर की सीमा पर आकर रमेश बैलगाड़ी से उतर पड़ा और उन सभी को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया।

दूसरे दिन रमेश दोस्तों के अड्डे पर न जाकर सीधा स्कूल पहुँचा। महीनों से पढ़ाई छूटी पड़ी थी। वार्षिक परीक्षाओं के दो महीने शेष रह गए थे। इस बार तो मुझे निश्चित रूप से उत्तीर्ण होना है, यह उसने निश्चय किया। उसकी सबसे बड़ी समस्या थी वह पाठ्यक्रम कैसे पूरा करे? उसने अभी तक तो पुस्तकों से हाथ भी नहीं लगाया था। सहसा उसे सुधीर मास्टर साहब की याद आ गई। वे इस संकट की घड़ी में उसे देवदूत जैसे लगे। वह उनके घर गया और उनके पैरों पर गिरकर रोते हुए बोला—'मैं भी कैसा मूर्ख था जो आपकी बात झुठलाता रहा। मास्टर जी अब मैं उत्तीर्ण होना

चाहता हूँ। मैं मन लगाकर पढ़ाई करूँगा। कृपया अब मेरी सहायता कीजिए।'

उसके इस परिवर्तन को देखकर मास्टर साहब और उनकी पत्नी बड़े प्रसन्न हुए। मास्टर साहब ने अपने घर पर कई-कई घंटे पढ़ाकर उसका पाठ्यक्रम पूरा कराया। उनका परिश्रम और रमेश का संकल्प सफल हुआ। परीक्षाफल आया तो वह द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हो गया था।

इस बीच रमेश के साथियों ने उसे बहलाने-फुसलाने की बहुत कोशिश की थी, पर अब वह सब बेकार ही रहा, क्योंकि अब उसे सही और गलत की पहचान हो गई थी। मन लगाकर पढ़ना और अच्छा बनना अब उसके जीवन का लक्ष्य बन चुके थे।



नेहा की सुमति

'साहब अस्पताल में हैं। ऑफिस जाते समय उनका स्कूटर किसी कार से टकरा गया था। सुबह से खून चढ़ रहा था, अब ऑक्सीजन दी जा रही है।' किसी अजनबी ने आकर अनीता को सूचित किया।

यह समाचार सुनकर अनीता का सिर घूमने लगा। उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया, तभी अजनबी कहने लगा— 'रुपयों की इसी समय जरूरत है, जिससे कि सही इलाज हो सके। बाजार से कुछ कीमती दवाएँ लानी हैं।'

'कितने रुपये चाहिए।' अनीता ने रुँधे गले से पूछा।

'एक हजार तो दे ही दीजिए। आप भी तुरत मेरे साथ चलिए।' वह व्यक्ति बोला।

अनीता यह बुरा समाचार सुनकर अपना धैर्य और विवेक दोनों ही खो बैठी थी। वह हाँफती हुई अपनी बेटी नेहा के कमरे में गई और बोली—'नेहा! पढ़ाई छोड़ो, जल्दी चलो तुम्हारे पिताजी अस्पताल में भरती हैं।'

'क्या, कैसे पता आपको?' नेहा आश्चर्य से बोली।

'एक आदमी खबर लेकर आया है, बाहर बैठा है। जल्दी से रुपये निकालो, देर न करो।' नेहा की माँ बोली।

नेहा भी कुछ हड़बड़ा सी गई। उसने जल्दी से लॉकर खोला। उस लॉकर में बस दो सौ रुपये ही रखे थे। महीने का अंत था और दो-तीन दिन पहले ही ऊनी कपड़े खरीदने में काफी रुपये खरच भी कर दिए थे।

'पड़ोस में शर्मा चाची जी के यहाँ से जाकर पैसे माँग लाओ।' माँ ने आदेश दिया।

रास्ते में नेहा सोचने लगी—'यह व्यक्ति तो हमारे लिए अजनवी है। कौन जाने वह कैसा आदमी है? सच भी बोल रहा है या झूठी बातें बना रहा है। कहीं ऐसा न हो कि यह कोई ठग हो। रुपये भी ले जाए और इसके साथ में जाकर भी किसी बड़ी मुसीबत में भी फँस जाएँ?'

सहसा ही उसे विचार आया—'क्यों न पिताजी के ऑफिस फोन किया जाए। वहाँ से कुछ तो पता लगेगा।'

शर्मा चाची को उसने पूरी बात बताई। उन्होंने भी यही सुझाव दिया कि किसी अजनवी की बात पर एकदम विश्वास नहीं करना चाहिए। इतना ही नहीं, कोई अपरिचित नेहा के घर बैठा है—यह सुनकर सुरक्षा की दृष्टि से उन्होंने अपने बेटे को भी तुरंत नेहा की माँ के पास भेज दिया।

नेहा ने पिताजी के ऑफिस में फोन किया, फोन उन्होंने ही उठाया। नेहा उनकी आवाज सुनकर चौंकी भी और बहुत खुश भी हुई। उसने पिताजी को जल्दी-जल्दी पूरी बात बताई।

पिताजी उसे समझाने लगे—'तुरंत शर्मा चाची को लेकर घर पहुँच जाओ। वह आदमी यह न जान पाए कि तुम्हें सचाई पता लग गई है। उसे बातों में बहलाए रखो। मैं पुलिस लेकर जल्दी ही घर आ रहा हूँ।'

'रुपये लाई? चलो अब जल्दी चलें।' नेहा के घर पहुँचते ही उसकी माँ ने कहा।

'माँ ! चाचीजी ने कहा है कि अधिक रुपयों की जरूरत भी पड़ सकती है, इसलिए भाई रुपये लेने बैंक गए हैं, अभी आते ही होंगे।' नेहा बोली।

इतने में शर्मा चाची चाय बना लाईं और अनीता जी को समझाते हुए बोलीं—'बहन जी ! आप परेशान न होइए। भाई साहब ठीक ही होंगे, ईश्वर कृपा करेगा। उसी ने इन भाई साहब को दूत बनाकर हमारे पास सहायता के लिए भेजा है, अन्यथा कौन अजनवी इतना कष्ट उठाता है?'

इसी प्रकार बातों में उन्होंने उस ठग को उलझाए रखा। उसे स्वप्न में भी ऐसी उम्मीद न थी कि वह ठगा जा रहा है, अपितु, वह मन ही मन अपनी योजना पर प्रसन्न हो रहा था। तभी पुलिस ने एकदम कमरे में प्रवेश किया। उन्हें देखकर घबरा गया। उसने वहाँ से भागना भी चाहा, परंतु सिपाहियों ने आगे बढ़कर तुरंत ही उसे गिरफ्तार कर लिया।

नेहा की बुद्धिमानी की सभी ने सराहना की। विपत्ति के समय भी यदि धैर्य और बुद्धि से कार्य किया जाए तो बड़े से बड़े संकट से भी उबरने का मार्ग मिल ही जाता है।



नासमझी का परिणाम

सौम्या देर से घर का दरवाजा खटखटा रही थी। 'पता नहीं आज माँ किधर जाकर बैठ गई हैं।' वह सोच रही थी। तभी दरवाजा खोलकर माँ लड़खड़ाती सी वापस लौटने लगी और जाकर पलंग पर लेट गई।

'क्या बात है माँ?' सौम्या ने उनके पास बैठते हुए पूछा।

उसने देखा कि माँ की आँखें लाल थीं, चेहरा तप सा रहा था। उसने उनके माथे पर हाथ रखा तो वह भी गरम पाया।

'माँ ! तुम्हें तो खूब तेज बुखार लगता है। तुम आराम से लेट जाओ।' माँ पर कंबल डालते हुए वह बोली।

कुछ देर तक वह माँ के हाथ-पैर सहलाती रही, पर उनकी बेचैनी निरंतर बढ़ती ही जा रही थी। सौम्या ने पूछा कि क्या कोई दवा ली है? तो उन्होंने मना कर दिया। अपराह्न का समय था, डॉक्टर की दुकान भी बंद हो गई थी। 'किसी को बाजार भेजकर बुखार उतारने की कोई दवा ही मँगा लेती हूँ।' सौम्या ने मन ही मन सोचा।

तभी पड़ोस की एक महिला सौम्या की माँ से मिलने आईं, वे उनकी सहेली थीं। उनका तेज बुखार देखकर वे भी परेशान हो गईं। माथे पर बराबर ठंढे पानी की पट्टी रखी, पर बुखार तनिक भी कम न हुआ।

'मैं दवा लेकर आती हूँ।' सौम्या ने कहा।

'दवा तो मेरे पास भी रखी है, बहुत अच्छी है, उससे जल्दी ही बुखार उतर जाएगा। कुछ दिनों पहले मुझे भी तेज बुखार आया था तो डॉक्टर ने वह दवा दी थी। एक-दो पुड़िया बची हैं, कहो तो ला दूँ।' वह महिला बोली।

सौम्या तो वैसे भी घबरा रही थी। उन्होंने जल्दी से घर जाकर दवा ला दी और एक खुराक माँ को दे दी। थोड़ी देर बाद उनकी आँख लग गई। लगा जैसे बुखार कम हो गया है। वह महिला भी अपने घर चली गई।

सौम्या की चिंता थोड़ी कम हुई, पर अभी एक घंटा भी न बीता था कि माँ घबराकर उठ गईं। वह पसीने से नहा रही थीं। उनके बदन पर छोटे-छोटे दाने निकल आए थे, चेहरा लाल पड़ गया था। यह सब देखकर सौम्या बहुत परेशान हो उठी। तभी उसके पिताजी ऑफिस से आ गए। वे तुरंत ही डॉक्टर को बुलाने चले गए। भाग्यवश डॉक्टर भी जल्दी ही आ गया। उसने अच्छी प्रकार से सौम्या की माँ का निरीक्षण किया। सौम्या ने यह भी बता दिया था कि उसने उन्हें डॉक्टर की दवा की एक पुड़िया बुखार उतारने के लिए दी है।

'ओह ! तो यह इस पुड़िया का असर है। थोड़ी देर और हो जाती तो फिर न जाने क्या होता?' डॉक्टर बोला।

उसने तुरंत रोगी के इंजेक्शन लगाया। दवा देकर वह रोगी के पास ही बैठा रहा, जिससे उसकी स्थिति का निरीक्षण कर सके। एक घंटे बाद वह बोला—'अब यह खतरे से बाहर हैं। जो दवा मैंने इन्हें दी है, वह निश्चित समय पर देते रहें और कल फिर मुझे दिखाएँ।'

फिर उन्होंने सौम्या को समझाया कि किसी भी बीमारी में न स्वयं, न किसी दूसरे को कोई दवा इस प्रकार नहीं देनी चाहिए। छोटी-छोटी बीमारी में भी उसी दवा का प्रयोग करना चाहिए, जिसके विषय में पूरी जानकारी हो। अच्छा तो यही है कि डॉक्टर की सलाह से दवा ली जाए। विशेष रूप से जब कोई रोग बड़ा हो तब तो डॉक्टर से परामर्श लेना अनिवार्य है। साथ ही कुछ समय रखी हुई दवा का, जिसकी प्रयोग तिथि निकल चुकी है या किसी के द्वारा दी हुई दवा का प्रयोग नहीं करना चाहिए। उन्होंने बताया

कि सौम्या की माँ को जो दवा दी गई थी, संभवतः उसकी प्रयोग तिथि निकल चुकी थी, साथ ही वह उन्हें अनुकूल भी न पड़ी थी और उसकी प्रतिक्रिया उन पर हो गई थी। यदि वे समय पर न आते तो बहुत कठिनाई हो जाती। सौम्या और उसके पिताजी ने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि समय पर रोगी को उपचार मिल सका।

'बेटे ! डॉक्टर की बात कभी न भूलना।' उन्होंने सौम्या से कहा।



जीवन प्रकाश

चौदह वर्ष का सूरज बड़ों के बराबर काम करता। वह प्रातः पाँच बजे उठता और रात्रि १० बजे तक निरंतर कार्य करता रहता। सुबह उठकर वह आधा घंटे पढ़ता, फिर झटपट तैयार होकर अखबार बाँटने के लिए निकल पड़ता। बिजली की सी तेजी से वह अखबार घरों में फेंकता। दो वर्षों में यह उसे अच्छी तरह रट गया था कि किसके घर कौन सा और किस भाषा का अखबार फेंकना है। दो घंटे में यह काम पूरा हो जाता। घर आकर खाना खाकर स्कूल जाता। पढ़ाई करके लौटता तो फिर ट्यूशन पढ़ाने जाता। छोटे बच्चों के तीन ट्यूशन उसके पास थे। इसके बाद वह पुस्तकालय जाता और वहाँ बैठकर नोट्स तैयार करता। घर लौटते रात के नौ बज जाते। खाना खाकर थोड़ी देर माँ और छोटे भाई-बहनों से बातचीत करता रहता। इतने समय में घड़ी १० बजा चुकी होती।

माँ अपने बेटे के भोजन का विशेष ध्यान रखतीं। वह सबसे अलग उसे पौष्टिक आहार-दूध, सस्ते मौसम के फल आदि खिला-पिला देतीं। छोटे भाई-बहनों को भी माँ ने सिखा-पढ़ा दिया था। वह उनसे वे चीजें लेने के लिए कहता तो वे तुरंत रटा हुआ उत्तर देते—'हमने खा लिया है भैया।'

सूरज की माँ जानती थी कि वह कितना परिश्रम करता है, पर वह उसे दूसरे बच्चों की भाँति सुख-सुविधाएँ देने में असमर्थ थीं। उन्हें वे दिन याद आते, जब सूरज के पिता थे और सभी सुख से रहते थे। दो वर्ष पूर्व नगर में दंगे हुए और वे उनकी चपेट में आ गए। पूरे परिवार पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। उनके गहने बिक गए, पर ऐसे कब तक खरच चलता? उन्होंने घर पर रहकर सिलाई, कढ़ाई, बुनाई का काम प्रारंभ किया, पर उससे भी पूरा न पड़ता। वे पास-पड़ोस के घर चौका-बरतन आदि का काम भी करना चाहती थीं, पर सूरज ने इसका विरोध किया। वह कहता था कि ऐसा करने पर वह पढ़ाई छोड़ देगा।

सूरज का तर्क था कि माँ घर पर तो काम करती ही हैं, साथ ही उनका घर पर रहना भी जरूरी है, जिससे छोटे भाई-बहनों को सुरक्षा और संरक्षण मिले। घर पर माँ नहीं रहेंगी तो वे इधर-उधर मनचाहे ढंग से घूमेंगे और बिगड़ेंगे। संसार में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है जो दूसरे पर विपत्ति आने पर भी अपना स्वार्थ पूरा करना चाहते हैं। सूरज के पिताजी ने दो कमरों का अपना मकान बनवा लिया था। वे सभी उसी में ही रहते थे। सूरज के पिताजी के मरने पर शुभचिंतक कहे जाने वाले अनेक रिश्तेदारों और पड़ोसियों ने उन्हें यह सुझाव दिया था कि वे मकान बेच दें, जिससे उन्हें पैसा मिले और बच्चों की पढ़ाई-लिखाई, जीवन निर्वाह आदि का काम अच्छी तरह से चल सके, परंतु सूरज की माँ ने यह स्वीकार नहीं किया। पिता के मरने पर किशोर सूरज भी कुछ ही दिनों में बुजुर्ग बन गया था। उसने भी माँ का समर्थन किया, वह यह बात समझता था कि घर बेच देने पर छत का साया भी उसके सिर से उठ जाएगा और वे दर-दर की ठोकरें खाएँगे। अतएव दोनों ने संकल्प लिया था कि हम परिश्रम करके रूखा-सूखा खाकर जैसे भी होगा अपना काम चला लेंगे, पर मकान न बेचेंगे, न किसी के आगे हाथ फैलाएँगे। अपना स्वार्थ पूरा न होते देख सलाह देने वाले शुभचिंतक

भी उनसे दूर होते चले गए। वे तो यही सोचते थे कि सस्ते में मकान खरीद लेंगे।

सूरज और उसकी माँ के कठिन परिश्रम से परिवार की गाड़ी जैसे-तैसे चलने लगी। यदि साहस न खोया जाए तो घोर संकट में भी कोई न कोई रास्ता निकल ही आता है।

छोटे बच्चों पर भी सूरज का प्रभाव पड़ा। वे भी पढ़ाई के बाद अपनी सामर्थ्य के अनुसार छोटा-मोटा काम करते, जैसे कागज के थैले और लिफाफे आदि बनाना। माँ चाहती थीं कि वे भी स्वावलंबन का गुण सीख जाएँ। धीरे-धीरे करके संकट के दिन निकलते गए। सूरज ने इसी प्रकार पढ़ाई और काम दोनों साथ-साथ करते हुए इंटर की परीक्षा पास कर ली। इसके बाद वह डाक विभाग की प्रतियोगी परीक्षा में बैठा। मेधावी तो था ही, एक बार में ही उत्तीर्ण हो गया। कुछ मास की ट्रेनिंग के बाद उसे नौकरी मिल गई। परिवार पर छाए संकट के बादल बहुत कुछ अब दूर होते चले गए।

सूरज की माँ बुद्धिमती थीं। सूरज की नौकरी लग जाने पर भी उन्होंने न स्वयं काम करना छोड़ा और न छोटे बच्चों को ही छोड़ने दिया। वह चाहती थीं कि सूरज जैसा स्वावलंबन का गुण सभी में आए। छोटे बच्चे भी अब कुछ बड़े हो चले थे। माँ ने स्पष्ट कह दिया—'अकेला भाई कितना कमा सकता है ? तुम सब ही अपनी-अपनी पढ़ाई-लिखाई और अपने कपड़ों का खरचा स्वयं अपने आप निकालो।'

परिणाम यह हुआ कि छोटे तीनों बच्चों में भी यह प्रतिस्पर्द्धा रहती थी कि वे कितने आत्मनिर्भर बन सकते हैं। १०-१२ वर्ष के होते-होते वे छोटे-छोटे बच्चों के ट्यूशन करने लगे थे। यही नहीं वे किसी के घर का छोटा-मोटा काम घंटे-दो घंटे करके पैसे कमाने में भी संकोच न करते। माँ ने उन्हें यही सिखाया था कि कोई भी काम बुरा नहीं है। चोरी करना और बुरे साधनों से धन कमाना ही बुरा है। अतएव कोई किसी की मोटर गाड़ी साफ कर देता, कोई

किसी के घर का बाजार से सामान ला देता, कोई किसी के बच्चे को एक-दो घंटे खिला लाता। इस प्रकार के एक-दो घंटे अन्य अनेकों कामों से ही उन्हें अपनी पढ़ाई आदि का काम चलाने के लिए धन मिल जाता।

अब परिवार का निर्वाह सुविधापूर्वक होने लगा था। परिवार के सभी सदस्य स्वावलंबी थे। बच्चे निरंतर प्रगति कर रहे थे। रिश्तेदारों और पड़ोसियों की सहायता के बिना ही उन्होंने ऐसा कर दिखाया था, पर उन्हें कितने संकट झेलने पड़े कि यह बात सूरज की माँ को अच्छी तरह याद थी। पितृहीन सूरज ने जो अभाव सहे थे उन्हें भी वह भूली न थी। उन्होंने मन की बात बच्चों के सामने रखी। सूरज और दूसरे बच्चों ने भी उसका समर्थन किया। सूरज का कथन था कि हमें तो अपने निर्वाह के योग्य मिल ही रहा है, यदि दूसरे संकटग्रस्तों के लिए हम कुछ कर पाएँ तो यह अच्छा ही होगा। सभी ने विचार-विमर्श के बाद यह निश्चय किया कि घर में टाइप प्रशिक्षण केंद्र खोला जाए। सभी ने कुछ रुपये डाले और दो टाइप मशीनें खरीद लीं। घर की दो मेज-कुरसी बरामदे में रख दी गईं। घर के बाहर बोर्ड लगा दिया गया—'जीवन प्रकाश टाइप संस्था' जीवन-प्रकाश नाम उनके पिता का था, साथ ही संस्थान के लिए सार्थक भी था। इस केंद्र में केवल ऐसे बच्चे ही टाइप सीख सकते थे जो पितृहीन थे। उनसे कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। सूरज ने टाइपिंग का कोर्स किया हुआ था। घर में टाइप मशीन आ जाने पर उसने घर के सभी सदस्यों को भी टाइप सिखा दी। वे सभी एक-एक घंटे इस केंद्र में श्रमदान करते। मध्याह्न १२ से ४ बजे तक उनका यह केंद्र खुला रहता। धीरे-धीरे बच्चों की संख्या बढ़ती गई और भी टाइप मशीनें खरीद ली गईं। उनकी इस निस्स्वार्थ भावना को देखकर समाजसेवी संस्थाओं और कुछ धनी व्यक्तियों ने भी उपहार में टाइप राइटर और फर्नीचर दिया। आज संस्थान नगर के

पितृहीन-अनाथ बच्चों में बहुत लोकप्रिय है। यह उन्हें निस्स्वार्थ भाव से स्वावलंबन का पाठ जो पढ़ाता है। सच है कि साहस, धैर्य और आशावादिता ही वे सबसे बड़े गुण हैं जो संकट की घड़ी में भी व्यक्ति को स्थिर रखते हैं। यही नहीं इनको अपनाकर व्यक्ति दूसरों का भी पथ-प्रदर्शक बनता है।



बहादुर तैराक

आसमान में बादल छाए हुए थे। सुहावना मौसम था। कई दिन की गरमी से आज राहत मिली थी। किशोर सूर्यनारायनन् नदी में स्नान करने के लिए आया था। वह बहुत देर तक नहाता रहा और प्रकृति की सुंदरता को निहारता रहा। सहसा उसका ध्यान घड़ी की ओर गया। 'ओह ! आज नहाते हुए बहुत देर हो गई, माँ प्रतीक्षा कर रही होंगी।' वह यह सोचने लगा और कपड़े बदलकर जल्दी-जल्दी घर की ओर बढ़ने लगा कि जोर की चीख सुनाई दी। कोई करुणार्द्र स्वर में पुकार रहा था—'बचाओ-बचाओ।' सूर्यनारायनन् के पैर आगे न बढ़ सके। मुझे स्थिति का पता लगाना ही चाहिए। वह अपने आप बोला। फिर उसी ओर मुड़ गया, जिस ओर से वह आवाज सुनाई दी थी।

सूर्यनारायनन् ने देखा कि एक बालिका नदी में डूब रही है और वही सहायता के लिए पुकार रही है। उस बालिका के संगी-संबंधी किनारे पर थे। उसकी पुकार सुनकर वे बिना कुछ सोचे पानी में कूद पड़े। दो स्त्रियाँ और एक आदमी उसे बचाने के लिए पानी में उतर पड़े, पर कृष्णा नदी वेग से बह रही थी। उन तीनों में

से कोई भी अच्छा तैराक न था। परिणाम यह हुआ कि वे पानी में डूबने-उछलने लगे।

सूर्यनारायनन् अब तक तो चुपचाप देख रहा था, पर अब वह खड़ा न रह सका। 'यदि अभी इनकी सहायता न की गई तो सभी डूब जाएँगे।' वह बुदबुदाया। वह अच्छा तैराक था। वह बिना कुछ अधिक सोचे-विचारे पानी में कूद पड़ा। जल्दी ही वह एक महिला को किनारे पर लाने में सफल हो गया। वह स्त्री होश में थी। किनारे पर आते ही वह विलाप करने लगी—'अरे बेटा ! मुझे क्यों बचा लिया। पहले तो उन तीनों को बचाना चाहिए था।'

'माँ ! तुम चिंता न करो। मैं एक-एक करके अभी सभी को निकाले लाता हूँ। सूर्यनारायनन् उस स्त्री को धैर्य बँधाते हुए बोला और पुनः नदी में कूद पड़ा।'

सूर्यनारायनन् ने देखा एक आदमी मृत्यु से जूझ रहा है। अतएव सबसे पहले वह उसी की ओर बढ़ा। यह अच्छी बात थी कि पानी का बहाव किनारे की ओर था। अतएव तीनों व्यक्ति किनारे की ओर बहते चले आ रहे थे, परंतु तैरना न जानने से वे कभी पानी के ऊपर आ जाते थे तो, कभी अंदर की तरफ ही पानी में चले जाते थे। सूर्यनारायनन् ने जल्दी ही एक आदमी को पकड़ लिया और उसे किनारे की ओर ले जाने लगा। तभी उसके पैर से कुछ टकराया। वह शीघ्र ही उस आदमी को किनारे पर छोड़कर आया और उसी स्थान पर गया। वहाँ खोज करने पर उसे पानी की तली में पड़ी हुई बालिका मिली। वह शीघ्रता से उसे भी किनारे पर ले गया। अब तक सूर्यनारायनन् बहुत थक चुका था। उसे लग रहा था कि बची हुई महिला को किनारे पर लाने की अब उसकी सामर्थ्य नहीं है, पर जल्दी ही कुछ तो करना ही होगा, जिससे उसके प्राण बच सकें। वह बुदबुदाया।

सूर्यनारायनन् की दृष्टि सहसा ही घाट पर नहाते हुए एक व्यक्ति पर पड़ी। उसने जोर से पुकार कर उसे बुलाया और सारी

स्थिति समझाई। वह व्यक्ति भी अच्छी तरह तैरना जानता था। उसने तेजी से जाकर तुरंत डूबती हुई उस महिला को पकड़ लिया और घाट पर ले आया।

अब सूर्यनारायनन् और उस व्यक्ति ने मिलकर डूबे हुए बेहोश व्यक्तियों को प्राथमिक चिकित्सा दी। उन्होंने उन्हें उलटा लिटाकर जल्दी ही पेट से पानी निकाला, इसके बाद उन्हें बनावटी साँस दी। उनके प्रयासों से उन व्यक्तियों ने आँखें खोल दीं। अब सूर्यनारायनन् और उसके साथी ने चैन की साँस ली। उन चारों व्यक्तियों ने उनका बहुत-बहुत आभार व्यक्त किया।

सूर्यनारायनन् को घर पहुँचते-पहुँचते दोपहर हो गई। उसके घर में घुसते ही माँ बोलीं—'क्यों रे ! अब आ रहा है तू। कहाँ रहा इतनी देर तक?'

'माँ तुम नाराज क्यों होती हो? पहले पूरी बात तो सुन लो। फिर निश्चित ही मुझे शाबाशी दोगी।' सूर्यनारायनन् बोला।

'अच्छा-अच्छा तेरी बात तो बाद में सुनूँगी। तू रोज ही शाबाशी का काम करता है। चल पहले कुछ खा-पी ले, सुबह से कुछ खाया भी नहीं।' यह कहकर माँ रसोईघर में गईं और खाना परोसकर ले आईं।

सूर्यनारायनन् ने खाना खाते हुए माँ को आज की पूरी घटना सुनाई। बेटे की बहादुरी की बात सुनकर माँ विह्वल हो उठीं। उन्होंने पुत्र को गले लगाते हुए कहा—'बेटा ! भगवान तुम्हें दुखियों की, संकट में पड़े हुए व्यक्तियों की सहायता करने की सदैव शक्ति दे। अपने लिए तो सभी जीते हैं, पर उसका जीवन धन्य है जो दूसरों के लिए कुछ करता है।'

'माँ ! तुम्हारी यह सीख मैं सदा याद रखूँगा और सदैव इसका पालन करूँगा।' सूर्यनारायनन् कहने लगा।



साहस का सुफल

श्रेयस के मामाजी की एक दुर्घटना में अचानक मृत्यु हो गई। समाचार सुनते ही उसके माता-पिता भागे चले गए। श्रेयस पर वे घर की सुरक्षा का दायित्व छोड़ गए। उन दिनों शहर में बहुत ही चोरियाँ हो रही थीं। अतएव वे श्रेयस को सावधानीपूर्वक रहने की बात कहकर गए थे। रात में श्रेयस के पास रहने के लिए पड़ोस के एक वृद्ध सज्जन से भी कह गए थे।

शहर में चोरों का कोई गिरोह आया हुआ था। शहर में दिन-रात चोरियाँ हो रही थीं। चोर इतने चालाक थे कि कोई सुराग भी न छोड़ जाते थे। अतएव पुलिस उनका पता न लगा पा रही थी। श्रेयस बहुत सावधान था। तीन-चार दिन में ही उसके माता-पिता लौट आने वाले थे। अतएव वह स्कूल भी न जा रहा था।

एक रात दरवाजा खटखटाने की आवाज आई। श्रेयस हड़बड़ाकर उठ बैठा। 'क्या पिताजी लौट आए?' उसने सोचा। वह नींद में ही उठकर चल दिया, परंतु दरवाजा खोलने से पूर्व उसने पूछताछ करना उचित समझा। 'कौन है?' उसने दो-तीन बार आवाज लगाई। उत्तर न पाने पर उसे संदेह हुआ। पिताजी दरवाजा खटखटाने पर सदैव आवाज देते थे। उसने आई ग्लास से झाँककर देखा। अँधेरे में तीन-चार व्यक्तियों की अस्पष्ट सी छाया दिखाई दे रही थी। श्रेयस समझ गया कि व्यक्ति चोरी करने आए हैं। उसने तेज आवाज में फिर तीन-चार बार पूछा—'कौन है?' परंतु उत्तर में केवल खट-खट ही मिली। कुछ देर मौन छाया रहा। फिर एक आवाज सुनाई दी—'दरवाजा खोलो, नहीं तो अब हम इसे तोड़ डालेंगे।'

तब तक वह वृद्ध सज्जन भी उठकर आ गए थे। 'चोर दरवाजे पर खड़े हैं।' यह जानकर वे अत्यधिक भयभीत हो गए। श्रेयस को साहस न खोने की बात समझानी तो दूर रही वे स्वयं डर से काँपने लगे। श्रेयस को ही कहना पड़ा—'दादाजी ! आप परेशान मत होइए, अभी सब ठीक हुआ जाता है।'

श्रेयस साहसपूर्वक, बिना डरे परिस्थिति से निबटने का उपाय सोचने लगा। डर के साथ ही व्यक्ति का विवेक और बुद्धि कुंठित हो जाती है और सफलता उससे दूर चली जाती है। उस समय श्रेयस को लगा कि घर में फोन लगा होता तो कितना अच्छा होता, वह पड़ोसियों और पुलिस को बुला लेता। संकट का सामना करने का सबसे अच्छा हथियार है—साहस, प्रत्युत्पन्नमति के रूप में विविध उपाय सुझाता और रक्षा करता है। सहसा ही श्रेयस के मन में एक विचार कौंधा। उसने अंदर जाकर अलार्म घड़ी का अलार्म इस प्रकार से बजाया कि वह फोन की घंटी जैसा लगने लगा। अब श्रेयस जोर-जोर से बोलने लगा—'एस. पी. साहब हैं ? ओह ! अंकल जी नमस्ते। आप जिन्हें खोज रहे हैं, लगता है वही हमारे दरवाजे पर खड़े हैं। जल्दी से आ जाइए.......क्या कहते हैं, आप स्वयं आ रहे हैं। बहुत अच्छा....जल्दी आइए।'

बाहर खड़े चोरों को पूरी बात सुनाई दे रही थी। फोन करके पुलिस को बुलाया गया है, यह बात पता लगते ही वे आतंकित हो उठे और तुरंत वहाँ से नौ-दो-ग्यारह हो गए।

श्रेयस के विवेक और साहस ने घोर संकट के बादल भी छितरा दिए। पड़ोसी, माता-पिता सभी ने श्रेयस के साहस की बहुत प्रशंसा की। साहसी ही जीवन में विजयी होता और यशस्वी बनता है।



सच्चा नागरिक

मनीष की अभी कुछ दिन पूर्व ही डाकघर में नौकरी लगी थी। वह डाकघर में सबसे कम आयु का नवयुवक था, परंतु कार्य में बड़ा कुशल था। थोड़े ही समय में उसने सारा कार्य अच्छी तरह सीख लिया। वह अपना काम ईमानदारी और परिश्रम से करता। वह चाहता था कि सभी कर्मचारी ऐसा ही करें और '**अहर्निश सेवामहे**' इस उद्देश्य को सार्थक बनाएँ।

मनीष ने डाकघर में नौकरी करने का निर्णय सोच-समझकर लिया था। वह ऐसा कार्य चाहता था कि जिसमें ईमानदारी की ही कमाई हो। रिश्वत और भ्रष्टाचार के कुप्रचलन से वह बहुत दुखी था। उसके पिता भी बहुत ईमानदार शासकीय कर्मचारी थे। उन्होंने भी यही शिक्षा दी थी कि ईमानदारी से थोड़ा कमाकर रूखा-सूखा खाकर भी व्यक्ति सुखी, संतुष्ट और नीरोगी रह सकता है, परंतु भ्रष्टाचार की कमाई अपने साथ रोग, शोक, पाप और पतन लेकर आती है। पिता की शिक्षा और संस्कारों ने गहराई से मनीष को प्रभावित किया था।

यद्यपि मनीष अपने व्यवसाय से संतुष्ट था, परंतु जब भी दीपावली या नया वर्ष आता तो वह बहुत ही अन्यमनस्क हो उठता। उसका कारण था डाकघर के उसके कुछ साथी। इन अवसरों पर वे सारे नियम-सिद्धांत ताक पर रख देते। वे डाकपाल की नजर बचाकर अच्छे-अच्छे शुभकामना कार्डों को छाँटने में जुट जाते। बंद कार्ड तो प्रायः बच जाते, परंतु बुक-पोस्ट वाले बेचारे कार्डों को एक-एक करके उनकी लालची नजर का सामना करना पड़ता। यदि वे उनकी नजरों को भा जाते तो कार्डों का स्थान उनके बैग में ही होता। इस प्रकार न जाने कितने कार्ड अपने गंतव्य तक न पहुँच पाते। बीच में ही उनका अपहरण कर लिया जाता। इतना ही नहीं घर जाकर उनकी चीड़फाड़ होती।

उनके बीच की सामग्री झटके से उखाड़कर फेंक दी जाती और उन पर किसी और का नाम, पता लिखकर उन्हें डाक में छोड़ दिया जाता। कुछ कार्डों की और भी दुर्दशा होती। वे बच्चों के हाथ पड़ जाते तो जब तक मजा आता बच्चे उनसे खेलते और बाद में तोड़-मरोड़कर फेंक देते।

मनीष ने अपने साथियों को बार-बार समझाया कि वे यह गलत कार्य न करें। वे दूसरों के साथ वह व्यवहार न करें जो उन्हें अपने लिए पसंद नहीं। वे अपने किसी संबंधी को कहीं शुभकामना पत्र भेजें और वह उसे न मिले तो उन्हें कितना बुरा लगेगा। पर साथी उसकी बात हँसकर टाल देते या फिर एक-दो मित्र तो उससे 'गांधी जी का चेला' कहकर ही व्यंग्य करने लगते। कोई कहता— 'उपदेश मत झाड़, अपनी आदर्शवादिता अपने ही पास रख, हमें जो करना है, करने दे।'

मनीष ने एक दिन यह बात डाकपाल महोदय के सामने रखी। परंतु उन्होंने भी सुनकर टालते से शब्दों में कहा—'मैं तो मना करता हूँ, इन लोगों से, परंतु मानते ही नहीं।' मनीष को उनकी यह बात कुछ उचित न लगी, क्योंकि डाकपाल का कर्त्तव्य तो यह था कि वे उनको कड़ाई से रोकते।

बात कार्डों तक रहती तब भी एक सीमा थी। कुछ साथी तो पत्रिकाएँ, बुक-पोस्ट से भेजी पुस्तकें भी इधर-उधर कर देते। कुछ उससे भी चार कदम आगे बढ़कर एकाध तो धनादेश के साथ भी ऐसा करते। मनीष समझ नहीं पाता था कि वह अब क्या करे? साथियों से कहता तो वे मजाक बनाते, डाकपाल महोदय से कहता तो वे गंभीरता से न लेते। मनीष की आँखों के सामने कभी शुभकामना पत्रों की प्रतीक्षा करते, कभी पुस्तकों के लिए प्रतीक्षा करते तो कभी धनादेश के लिए व्याकुल व्यक्तियों के मुख रूपादित होने लगते। अंत में उसने यही दृढ़ निश्चय किया कि अकेले ही इस बुराई से संघर्ष करना होगा, क्योंकि अन्याय देखना भी अन्याय

करने के ही समान अपराध है। गलत कार्य को मूक स्वीकृति देने का अर्थ है—उसको बढ़ावा देना।

मनीष का एक मित्र नगर के डाक तार विभाग के निदेशक के घर आता जाता था। उसने सोच-समझकर उससे समस्त चर्चा की। एक दिन अचानक ही उसके डाकघर का निरीक्षण हुआ। कुछ व्यक्तियों को प्रमाण सहित गलत कार्य करते हुए पकड़ लिया गया और उन्हें दंड दिया गया। उस दिन से कर्मचारियों को मनमानी करने की आदत छोड़ देनी पड़ी। सच है कि थोड़ी सी सूझबूझ से गलत कार्य करने की प्रवृत्ति को रोका जा सकता है। समाज के स्वस्थ विकास के लिए यह आवश्यक भी है और हम सभी का नागरिक कर्त्तव्य भी है।



संकट के समय

महेश अपने दो साथियों—दीपक और सूरज के साथ घर के बरामदे में खेल रहा था। बाहर रिमझिम-रिमझिम बरसा की फुहारें पड़ रही थीं अतएव बाहर खुले में खेलने तो जा नहीं सकते थे। तीनों उस बड़े से बरामदे में ही मजे में बैडमिंटन खेल रहे थे। स्कूल में बैडमिंटन की प्रतियोगिता होने वाली थी इसलिए वे उसी की तैयारी कर रहे थे।

खेलते-खेलते उनकी चिड़िया बिजली के तारों में जाकर फँस गई। दीपक ने झटपट पास पड़ा स्टूल घसीटा और उस पर चढ़कर चिड़िया उतारने लगा। सहसा ही उसका हाथ बिजली के तार से जा लगा। दीपक तुरंत उससे चिपक गया। उसके मुँह से जोर की चीख निकल गई। महेश और सूरज दौड़े चले आए। 'क्या बात है?' दीपक से उन्होंने पूछा, पर उसकी तो आँखें ऊपर को चढ़ रही थीं और मुँह से आवाज भी न निकल रही थी। उसकी यह स्थिति देखकर सूरज तो डरकर भाग गया, परंतु महेश बड़ा बुद्धिमान था।

उसने तुरंत सोच लिया कि तनिक भी देर की गई तो मित्र की मृतदेह ही मिलेगी। उसने इधर-उधर निगाह दौड़ाई, पास में एक लकड़ी का डंडा पड़ा दिखाई दिया। महेश ने दौड़कर उसे उठा लिया और जान की परवाह न करते हुए बिजली के तार पर जोर-जोर से चोट की। दीपक तार से छूटकर दूर जा पड़ा। महेश भागकर उसके पास गया। वह बेहोश था, अब महेश घर के अंदर गया। उसने माँ को सारी बात बताई। उन्होंने मैनस्विच बंद किया और बाहर आईं। तुरंत ही दीपक को लेकर महेश और उसके माता-पिता अस्पताल पहुँचे। उसकी स्थिति गंभीर थी, बदन नीला पड़ने लगा था। डॉक्टरों ने उसे तुरंत आपात कक्ष में भरती किया। बहुत ही उपचार के बाद दीपक को खतरे से बाहर किया जा सका।

समाचार पाकर दीपक के माता-पिता भी अस्पताल भागे। पूरी बात जानकर महेश के प्रति वे कृतज्ञ हो उठे। उसी की सूझबूझ और साहस ने उनके बेटे को बचाया था। डॉक्टर कह रहे थे कि तनिक सी देर और हो जाती तो दीपक को बचाना बहुत कठिन था। वह एक सप्ताह तक अस्पताल में रहा तब कहीं जाकर कुछ ठीक सा हुआ। दीपक महेश से अब और अधिक प्रगाढ़ स्नेह करने लगा है, क्योंकि उसका जीवन महेश का दिया हुआ उपहार जो है।

बारह वर्षीय महेश कुमार का नगर की समाजसेवी संस्था की ओर से अभिनंदन किया गया। सभापति महोदय ने बच्चों और किशोरों को संबोधित करते हुए कहा—'बच्चो! तुम्हारे अंदर अपार शक्ति है। तनिक सी सूझबूझ और साहस से तुम ऐसे कार्य कर सकते हो कि हम बड़े भी तुम पर गर्व करें। संकट आने पर जो घबराता नहीं, मन को स्थिर रख सकता है, वही बड़े कार्य भी कर सकता है। इसके बाद उन्होंने महेश का परिचय कराया और उसकी प्रत्युत्पन्नमति तथा साहस की प्रशंसा की। महेश को कई उपहार मिले और राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कृत हुआ।'



भटकन का अंत

चारु ग्यारहवीं कक्षा की छात्रा थी। वह अच्छे खाते-पीते परिवार की थी, देखने में सुंदर और आकर्षक थी। पढ़ाई में वह सामान्य स्तर की थी। वह स्वभाव से बहुत ही मिलनसार थी, जल्दी ही लड़कियाँ उसकी सहेलियाँ बन जाती थीं।

कुछ दिनों में लता नाम की एक लड़की चारु की सहेली बन गई थी। दोनों में अधिक घनिष्ठता हो गई थी। लता ने चारु का परिचय उसी कॉलेज ही में दूसरी कक्षाओं में पढ़ने वाली चार-पाँच लड़कियों से कराया। चारु को सभी की सभी बड़ी खुशमिजाज और मिलनसार लगीं। वे सभी लता के पास आती रहती थीं, अतएव चारु की भी सहेलियाँ बन गईं।

एक दिन लता पूछने लगी—'चारु ! आज शाम को हम सभी सहेलियाँ पिक्चर देखने जा रही हैं। हम सभी की इच्छा है कि तुम भी साथ चलो।'

'पर मुझे तो घर से अनुमति नहीं मिलेगी। माँ अपने साथ दिखा लाती हैं। तुम लोगों के साथ पता नहीं भेजेंगी भी या नहीं ?'

'अरी ! घर में यह सब कहने की जरूरत भी क्या है ? माँ और पिताजी को तो बस यही कहना है कि तू सहेली के घर जा रही है।' लता ने यह सुझाव दिया।

चारु ने इस बात पर आपत्ति की। लता और दूसरी लड़कियाँ हँसने लगीं और चारु का मजाक बनाते हुए बोलीं—'हमें क्या पता था कि तू तो अभी दूध पीती बच्ची ही है। माता-पिता की उँगली पकड़े बिना एक कदम नहीं चल सकती।'

यह सुनकर चारु का मुख तमतमा गया। उसकी समझ में न आ रहा था कि वह क्या गलती कर रही है ? पर सहेलियाँ थीं कि उसका मजाक बनाए चली जा रही थीं, चारु रुआँसी हो गई। शकुंतला कहने लगी—'अब तुम सब चुप भी होगी या नहीं। चारु

दब्बू और डरपोक नहीं है, जैसा कि तुम समझ रही हो। आज तो वह हमारे साथ चल ही रही है।'

फिर वह चारु से बोली—'देखो ! तुम्हारे टिकिट आ चुके हैं, आज तो तुम्हें हमारे साथ चलना ही पड़ेगा।'

चारु बेचारी कुछ न कह पाई। वह अपनी सहेलियों से अपमानित न होना चाहती थी। अतएव दोपहर को उसने सहेली के घर जाने की अनुमति ले ली। लता के साथ वह सिनेमाघर पहुँच गई। दूसरी सहेलियाँ भी वहीं उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। सभी ने फिल्म देखी और खाया-पिया। चारु पहली बार माँ को धोखा देकर आई थी, इसलिए अंदर से कुछ घबराहट और भय का अनुभव कर रही थी, पर दूसरी और सहेलियों के साथ उसे यह सब अच्छा भी लग रहा था।

दूसरे दिन लता ने चारु से पूछा कि उसे कल घर पर डाँट तो नहीं पड़ी थी। चारु के मना करने पर उसने समझाया कि कभी-कभी तो सहेलियों के साथ घूमना ही चाहिए, इससे स्वतंत्र व्यक्तित्व बनता है। अब वे इतनी नन्हीं बच्ची तो नहीं हैं कि हर पल माँ का आँचल पकड़कर घूमती रहें। माता-पिता की तो आदत होती है कि लड़कियों को घर की चहारदीवारी में कैद करने की।

कुछ दिनों बाद लता ने चारु को शाम के समय घूमने के लिए बुलाया। चारु ने मना भी किया, पर उसने एक न सुनी। उसका कहना था कि वह चारु को स्वावलंबी बनाकर ही रहेगी।

पहली-दूसरी बार जब कोई गलती की जाती है तो व्यक्ति का अंत:करण उसे धिक्कारता है, सचेत करता है। पर बार-बार जब वह जान-बूझकर गलती करता है तो अंतर्मन की आवाज भी मौन हो जाती है। अपने सीधे माता-पिता को धोखा देते हुए दो बार तो चारु झिझकी, उसे बुरा भी लगा, पर धीरे-धीरे वह अभ्यस्त हो गई। यही नहीं, स्वयं ही नए-नए बहाने खोजने में निपुण हो गई। एक बार गलत रास्ते पर बढ़ जाने के बाद व्यक्ति उचित-अनुचित का विवेक भी भूल जाता है। अब चारु अपनी सहेलियों के कहने के

अनुसार चलने लगी थी। माता-पिता की रुचि भावनाओं को जानने का भाव ही उसमें न उठता था।

चारु के रहन-सहन और रुचि-रुझान में भी परिवर्तन आने लगा। जैसे मित्रों के साथ हम रहते हैं, उसका प्रभाव निश्चित रूप से वैसा ही पड़ता है। चारु का मन श्रृंगार करने, फैशन के वस्त्र पहनने और घूमने में अधिक लगता, पढ़ाई में कम। सहेलियों के साथ जल्दी-जल्दी कहीं न कहीं जाने का कार्यक्रम बनता रहता। घर पर वह कोई न कोई अच्छा बहाना बना देती। चारु की माँ ने एक-दो बार उसे टोका भी कि वह पढ़ती कम है और घूमती अधिक है। वह माँ की इन बातों को टाल देती। माँ का इस विषय में कुछ भी कहना-सुनना उसे बहुत बुरा लगता। उसे अब अपनी सहेलियाँ ही अच्छी लगती थीं और उन्हीं की हर बात वह आँख मूँदकर मानने लगती थी।

कभी-कभी ऐसा होता है कि व्यक्ति बाहरी चमक-दमक में बुरी तरह डूब जाता है, पर उसके अंदर का घिनौनापन उस समय उसे दीखता नहीं या वह समझ नहीं पाता। चारु के साथ भी यही हुआ। वह समझ न पाई कि उसकी सहेलियाँ उसे किस गलत रास्ते पर खींचे ले जा रही हैं। वे सभी असामाजिक कार्य करने वाले एक गिरोह से संबंधित थीं। सुंदर और भोले दीखने वाले अनेक लड़के लड़कियाँ इस गिरोह में थे। कोई भी सुंदर सीधा-साधा किशोर-किशोरी दीखता तो उसे तरह-तरह से बहलाकर अपने विश्वास में ले लिया जाता। यह काम प्रायः वे लड़के-लड़की करते जो गिरोह में अधिक समय से थे। इसका उन्हें अतिरिक्त पुरस्कार मिलता। नए सदस्यों को घुमा-फिराकर, धन और अन्य उपहार देकर वे उनका विश्वास पा लेते, तब उनसे असली काम कराया जाता, जो नशीली दवाएँ बेचने का और तस्करी का था। चारु को पहली बार जब यह काम सौंपा गया तो वह चकराई, पर वह उनके अहसानों से दबी हुई थी, अतएव मना भी न कर पाई। यह तो चारु का भाग्य ही अच्छा था कि वह इस काम से जल्दी ही छूट गई, अन्यथा आज वह

जेल में होती। हुआ यह कि जल्दी ही पुलिस अधीक्षक को यह सूचना मिल गई कि कॉलेज के अनेक लड़के-लड़कियाँ इस काम में लगे हैं। उनके प्रयासों से वे सब कुछ दिनों में ही पकड़ लिए गए। बेटी पर लगे कलंक को दबाने के लिए चारु के पिताजी ने बहुत भाग-दौड़ की। पुलिस अधीक्षक उनका मित्र भी निकल आया। चारु को जैसे-तैसे छुड़ा लिया। उसी वर्ष बोर्ड की परीक्षा में वह फेल भी हो गई। अतएव पिताजी ने उसका कॉलेज जाना भी बंद कर दिया और व्यक्तिगत परीक्षा का आवेदन पत्र भरवा दिया। अब चारु पर माता-पिता दोनों ही पूरी तरह से निगाह रखने लगे थे। उन सब सहेलियों से मिलना-जुलना बिलकुल बंद करा दिया गया था। उन्होंने चारु को पास पड़ोस की अच्छी लड़कियों को मित्र बनाने के लिए प्रोत्साहित भी किया। उसे अच्छा साहित्य पढ़ने के लिए दिया, मनोरंजन के स्वस्थ साधन दिए। चारु के पिता विवेकशील थे, वे जानते थे कि जब तक अंदर से चारु को गलत बातों से अरुचि न होगी, तब तक वह बाहरी प्रयास पूरी तरह सफल न होंगे। अतएव उन्होंने समय-समय पर कभी स्वयं बात करके, कभी साहित्य के माध्यम से चारु को यह तथ्य हृदयंगम कराया कि पढ़ाई-लिखाई छोड़कर आवारागरदी करने वाले इस प्रकार के गिरोहों से संबंधित लड़के-लड़कियों का भविष्य अंत में कैसा अंधकारमय बन जाता है?

सचाई जानकर चारु का मन काँप उठा। अब उसकी समझ में पूरी तरह आया कि उसने कितनी भयंकर भूल की थी। उसने सोचा—'अभी तो कुछ भी नहीं बिगड़ा है। उज्ज्वल भविष्य मेरे सामने है।' वह पूरी तरह से पढ़ाई में जुट गई। परिश्रम का फल मीठा होता है। चारु पढ़ने में अच्छी तो थी ही, वह उस वर्ष प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई। अंकों के आधार पर उसने अच्छे कॉलेज में जाना प्रारंभ किया। उसने संकल्प लिया 'राह भटकी भोली लड़कियों को मैं यथासंभव सही रास्ता दिखाऊँगी।'



सफल शिक्षण

ओजस को अपने पालतू कुत्ते से बड़ा प्यार था। 'टाइगर' था भी बड़ा प्यारा कुत्ता। वह अलसेशियन जाति का तेज-तर्रार, सुंदर, होशियार, वफादार कुत्ता था। जरा सी आहट पाते ही झट चौकन्ना हो जाता था और इतना भौंकता था कि आने वाले के कदम वहीं ठिठक जाते थे। किसी की क्या हिम्मत कि एक पग भी आगे बढ़ा सके। अपने मालिक का जरा सा इशारा मिलते ही वह आगंतुक के पेट पर दोनों पैर रखकर खड़ा हो जाता। उसका ऐसा कार्य, कोयल जैसा काला रंग, चमकती हुई लाल आँखें आने वाले को डराने के लिए पर्याप्त थीं।

ओजस न केवल कुत्ते की सेवा किया करता था, अपितु उसे प्रशिक्षित भी करता था। उसने उसे तरह-तरह की बातें और अनेक खेल सिखा रखे थे। जो भी उसे देखता प्रशंसा किए बिना न रहता। घर वालों को तो टाइगर पर बहुत ही विश्वास था।

एक दिन की बात है, पिताजी ऑफिस गए थे और माँ किसी आवश्यक कार्य से सहेली के यहाँ। घर की सुरक्षा का दायित्व वे ओजस पर छोड़ गई थीं। अप्रैल का महीना था, उमस भरी दोपहरी थी। ओजस की आँख लग गई। सहसा ही उसे कुछ खटका सा लगा। उसने आँखें खोलकर देखा तो पाया कि दो अनजाने आदमी पिताजी के कमरे में घुसे माल समेट रहे हैं। पिताजी के कमरे और ओजस के कमरे के बीच में दरवाजा था, जिससे वह वहाँ की सारी गतिविधियाँ स्पष्ट रूप से देख पा रहा था। सहसा ही उसे ध्यान आया कि घर में वह अकेला है। उसके मुँह से जोर से चीख निकल गई—'टाइगर'। टाइगर

उस समय कोठी के मुख्य द्वार पर बैठा था। चोर पिछवाड़े की खुली खिड़की से घर में घुसे थे। ओजस की चीख सुनकर एक आदमी उसकी ओर बढ़ा। ओजस ने बहुत साहस से काम लिया। वह छलांग लगाकर बिस्तर से कूदा और दूसरे दरवाजे से बाहर भाग गया। साथ ही उसने फुरती से दरवाजा बंद करके बाहर से सांकल लगा दी। तब तक टाइगर भी वहाँ दौडकर आ गया था। चोर कमरे में बंद हो चुके थे। ओजस अगले उपाय पर विचार कर ही रहा था कि उसने देखा कि चोर उस कमरे की सलाखें टेड़ी कर रहे हैं। वह यह सब देखकर समझ गया कि वे उससे निकलकर भागने की कोशिश कर रहे हैं।

उसने मुड़ी हुई सलाखों के बीच से टाइगर को अंदर घुसने के लिए उकसाया। थोड़ी सी जगह से ही टाइगर अंदर घुस गया। इसी बीच एक चोर ने गोली चलाई, जो टाइगर के कान को छेदती हुई निकल गई। कान से खून की धारा बह चली, परंतु उसकी परवाह न करके टाइगर उछलकर चोर के कंधे पर पैर रखने लगा, जिससे उसकी बंदूक हाथ से छूट पड़ी। ओजस ने देखा कि अकेला टाइगर दोनों चोरों का साहस से मुकाबला कर रहा था। वे दोनों टाइगर से अपना बचाव करते हुए कमरे में इधर-उधर दौड़ रहे थे। 'अच्छा ही सबक मिलेगा तुम्हें आज।' ओजस मन ही मन बोला। अब उसने देर करना उचित नहीं समझा। वह जल्दी से घर से दौड़ पड़ा और पड़ोसी के यहाँ आकर ही साँस ली। उसने उन्हें जल्दी-जल्दी पूरी बात बताई और पुलिस को फोन किया। पड़ोस के दो-तीन व्यक्ति तुरंत ही ओजस के साथ उसके घर चल पड़े।

सभी ने देखा कि उछलकर, काटकर, नोंचकर, खरोंचकर टाइगर चोरों को इधर-उधर दौड़ा रहा है। उनके मुख पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। इतने व्यक्तियों को देखकर वे हाथ जोड़कर 'बचाओ-बचाओ' की प्रार्थना करने लगे। थोड़ी देर में पुलिस आ गई। तब

तक ओजस की माँ आ गई थीं। घर में इतना बड़ा हंगामा देखकर वे भौंचक्की सी रह गई थीं। पुलिस के कहने पर उन्होंने कमरे का दरवाजा खोला और पुकारा—'टाइगर'। टाइगर जल्दी से आकर उनके पैरों से लिपट गया। उसके शरीर पर जगह-जगह खून लगा हुआ था। कान से अब भी लगातार खून बह रहा था। पुलिस जैसे ही चोरों को थाने ले गई, वैसे ही ओजस की माँ ने टाइगर को उसके साथ डॉक्टर के यहाँ भेजा। काफी देर बाद खून बहना बंद हुआ। कड़े संघर्ष और घोर थकान के उपरांत भी टाइगर के मुख पर संतोष झलक रहा था। घर आकर बहुत देर तक मालकिन की गोद में मुँह रखकर लेटा रहा। वे भी प्यार से उसे सहलाती रहीं, थोड़ी-थोड़ी देर बाद दूध और दवाएँ देती रहीं। बेटे और टाइगर दोनों की बहादुरी से आज उनका मन गर्वोन्नत था। दोनों के कारण ही आज घर की सुरक्षा हुई थी। दोनों को दी गईं उनकी शिक्षाएँ आज विपत्ति की कसौटी पर खरी उतरी थीं।



परिश्रम है कल्पवृक्ष

पुरु अभी सोलह वर्ष का ही था कि अचानक उसके पिताजी की मृत्यु हो गई। उससे छोटे तीन भाई-बहन थे। सभी पढ़ रहे थे, पुरु स्वयं हाईस्कूल का छात्र था। किसी ने सोचा भी न था कि पिताजी बीच मझधार में परिवार की नौका छोड़कर यों एकाएक चले जाएँगे। माँ तो इस आकस्मिक प्रहार से जैसे मुमुर्ष सी ही हो गईं थीं। पुरु का हृदय भी कम आहत न था, पर वह अपने आँसू चुपचाप पीकर माँ को समझाया करता। वह कहता—'माँ ! तुम बिलकुल भी चिंता न करो। बस एक-दो वर्ष मुझे और पढ़ा दो, मैं जल्दी ही नौकरी खोज लूँगा।'

माँ उससे तो कुछ न कहतीं, पर वह निरंतर यही सोचतीं कि जब अच्छे-अच्छे पढ़े-लिखे युवकों को नौकरी मिल नहीं रही है तो उनके बेटे को नौकरी कैसे मिलेगी? घर का खरच चलाने के लिए उन्होंने सिलाई-बुनाई, पापड़-बड़ी बनाना आदि छोटे-मोटे काम करने प्रारंभ कर दिए। पड़ोसियों ने प्रारंभ में दो-चार बार कुछ व्यंग्य सा किया, फिर वे भी चुप हो गए। यही नहीं, कुछ दिनों बाद वे उनके यहाँ सामान लेने भी आने लगे। क्योंकि पुरु की माँ थोड़ा करती थीं, पर जो भी बनाती थीं वह अच्छा बनाती थीं और वस्तुएँ शुद्ध सामग्री से तथा अच्छी बनाती थीं। अपने बच्चों को भी वे सदैव ईमानदारी और परिश्रम से कार्य करने की अनेक शिक्षाएँ दिया करती थीं।

पिताजी के फंड-पैंशन और माँ के परिश्रम से घर की गाड़ी जैसे-तैसे चलने लगी थी, परंतु पुरु इससे संतुष्ट न था। वह निरंतर प्रयास करता रहता कि उसे कोई अच्छी नौकरी मिल जाए। बच्चों के तीन-चार ट्यूशन उसने ले लिए थे। वह शाम को बच्चों को पढ़ाता था और उससे अपनी पढ़ाई-लिखाई आदि का पूरा ही खर्चा निकाल लेता था।

एक बार डाक-विभाग में रिक्त स्थान निकला। पुरु ने तुरंत आवेदन पत्र भेज दिया। कुछ मित्रों ने कहा था कि छोटी-मोटी क्लर्की करने से क्या? किसी अच्छी नौकरी की तलाश करो, परंतु पुरु कुछ दूसरी ही बात सोचता था। इस समय तो उसे नौकरी की नितांत आवश्यकता थी, भले ही वह छोटी-मोटी ही क्यों न हो? वह जानता था कि अपनी प्रतिभा और परिश्रम के बल से ही वह निरंतर प्रगति करता जाएगा।

प्रतियोगिता में पुरु को पाँचवाँ स्थान प्राप्त हुआ। बी. ए. की परीक्षा का उसने प्राइवेट फार्म भर दिया। ट्रेनिंग की समाप्ति के तुरंत बाद ही स्थानीय डाकघर में क्लर्क के पद पर पुरु की नियुक्ति हो गई।

जिस दिन पहली बार नौकरी पर गया, पुरु बहुत प्रसन्न था। वह स्वावलंबी जो बन गया था। भले ही नौकरी छोटी थी, परंतु वह परिवार की सहायता करने में समर्थ था। प्रथम दिन ही माँ ने उसे समझाया था—'बेटा ! काम को भगवान की ही पूजा समझकर करना। कोई काम न छोटा है और न बड़ा। ईमानदारी और परिश्रम से किया जाने वाला प्रत्येक अच्छा काम बड़ा है। सदैव यह बात ध्यान रखना। ईमानदारी और परिश्रम की कमाई ही समस्त परिवार में सुख और शांति लाती है, भले ही वह सीमित ही क्यों न हो ?'

पुरु ने जल्दी ही अपने कार्य से सब अधिकारियों का मन जीत लिया। न कभी वह देर से आता था, न कोई कामचोरी और लापरवाही ही करता था। सौंपे गए काम को बहुत ही जिम्मेदारी से करता था। जल्दी ही वह अधिकारी वर्ग का विश्वासपात्र बन गया। साथियों के साथ भी उसका व्यवहार बहुत शिष्ट और मधुर था। अतएव जल्दी ही उनका भी स्नेही बन गया।

पुरु को कार्य करते अभी थोड़ा ही समय बीता था, परंतु वह उत्तरदायी व्यक्ति समझा जाने लगा था। अधिकारी उसे महत्त्वपूर्ण कार्य विश्वासपूर्वक सौंप देते थे। उसकी कुशलता और ईमानदारी का परिणाम यह हुआ कि एक अधिकारी जब जाता था तो दूसरे से स्वतः ही उसकी प्रशंसा गोपनीय रूप से कर जाता था। अधिकारी उसे आगे बढ़ने का प्रोत्साहन देते। पुरु जल्दी-जल्दी परीक्षाएँ उत्तीर्ण करता गया, पदोन्नति पाता गया। परिणाम यह हुआ कि कुछ ही वर्ष में वह अधिकारी बन गया। प्रायः देखा जाता है कि उच्च पद पाकर व्यक्ति अभिमानी बन जाते हैं। अपने अधीनस्थों से रूखा और कठोर व्यवहार करते हैं, परंतु पुरु में तनिक भी दंभ नहीं आया था। उसका स्वभाव और व्यवहार अपरिवर्तित था। कार्य के प्रति भी वह पहले जैसा ही गंभीर और

ईमानदार था। निरंतर आगे बढ़ते रहने की अभी भी उसमें असीम कामना थी। परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे प्रगति करता हुआ वह डाकघर के निदेशक के पद पर पहुँच गया। समाज और गरीब बेरोजगार युवकों के लिए वह प्रेरक उदाहरण बन गया। सच है— दृढ़ संकल्प, ईमानदारी और परिश्रम से मनस्वी, काँटे भरे मार्ग को भी सुरक्षित कर लेते हैं।



प्रत्युत्पन्नमति

जाड़ों के दिन थे, जल्दी अंधकार छा गया था। इरा जल्दी-जल्दी अपने घर की ओर कदम बढ़ा रही थी। वह सोच रही थी कि दिन छिपने से पहले घर लौट आएगी, परंतु सहेली के यहाँ देर हो ही गई। उसकी बहन का विवाह था और वह चाहते हुए भी जल्दी न निकल सकी। अब भी वह जैसे-तैसे ही निकली थी।

इरा के साथ उसकी एक सहेली और थी, पर उसका घर जल्दी ही पड़ गया। वहाँ तक का रास्ता भी बाजार का था, परंतु इरा को अपने घर तक पहुँचने के लिए सुनसान सी सड़क से जाना होता था। कुछ देर से इरा को लग रहा था कि कोई उसका पीछा कर रहा है, वह कुछ घबरा सी गई। उसने कनखियों से पीछे देखा, यह तो वही व्यक्ति था जो चौराहे की पान की दुकान पर उन दोनों पर आवाज कस रहा था। 'वह पीछा कर रहा है, यह मेरा भ्रम भी हो सकता है।' यह सोचकर इरा दूसरे रास्ते पर मुड़ गई। उसने देखा कि उसके पीछे वह व्यक्ति भी मुड़ गया। वह फिर मुड़ी तो उसने उस व्यक्ति को भी वैसा ही करते पाया। अब उसे दृढ़ निश्चय हो गया कि वह उसी का पीछा कर रहा है। इरा घबरा उठी, उसके

घबराने का एक कारण और था कि वह गले में सोने का हार पहने थी और वही जिद करके पहन आई थी। हार लुट जाने पर माँ उससे अधिक तो कुछ न कहेंगी, पर उनका उदास मुख इरा की आँखों के सामने आ गया। इतने बड़े नुकसान की कल्पना से ही वह सिहर उठी। इसके स्थान पर तो बाजार से नकली गहने लेकर भी पहने जा सकते हैं, जो इससे कहीं अधिक सुंदर दीखते हैं और जिनके खो जाने पर भी कोई हानि नहीं। 'भविष्य में कभी मैं ऐसा खतरा मोल नहीं लूँगी।' इरा मन ही मन बोली, परंतु प्रश्न था कि इस समय क्या किया जाए? सहसा ही उसे एक उपाय सूझा, इरा ने जल्दी पर्स से रूमाल निकाला, फिर गले का हार उतारकर उसमें अच्छी तरह बाँधा और राह चलते चुपचाप से झटपट उस रूमाल को लैटर बक्स में डाल दिया। अभी वह दो-चार मिनट ही चली होगी कि वही हुआ जिसकी उसे आशंका थी। वह व्यक्ति तेजी से आकर उसके गले पर झपट्टा मारने लगा। इरा पूरी शक्ति लगाकर चिल्लाई—'बचाओ-बचाओ।' रास्ते पर दूर एक-दो राहगीर जा रहे थे। वे उसकी आवाज सुनकर उधर ही मुड़ आए। उन्हें आते देखकर लुटेरा तेजी से भाग गया, पर जाते-जाते भी उसने इरा का पर्स छीन ही लिया। संभवतः वह सोच रहा था कि उसने हार उतारकर पर्स में रख लिया है। पर्स में लगभग दस रुपये थे। इरा ने चैन की साँस ली। आज वह बाल-बाल सुरक्षित बची थी। उसका दिल अभी भी जोर-जोर से धड़क रहा था। क्या पता रास्ते में फिर वह लुटेरा मिल जाए? तब तक दोनों राहगीर इरा के निकट आ गए और उससे पूरी बात पूछने लगे। संयोगवश उनमें से एक व्यक्ति को इरा के घर की ओर ही जाना था। 'चलिए मैं आपको छोड़ देता हूँ।' उसने कहा और इरा को उसके घर तक पहुँचा दिया।

इरा का चेहरा मुरझाया हुआ था, उसके पैर काँप रहे थे। उसे देखकर माँ ने पूछा—'क्या बात है इरा, क्या हुआ तुम्हें?'

वह माँ से लिपटकर फफक-फफक कर रो पड़ी। डरते-डरते उसने माँ को पूरी बात बता दी। मैं तो पहले ही तुमसे मना करती थी, पर चलो कोई बात नहीं, आगे से सबक लेना। 'माँ ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा और जल्दी से पानी लाकर पिलाया।' कुछ देर बैठकर इरा थोड़ी आश्वस्त हुई। अब उसे पिताजी का डर लगने लगा कि वह बहुत ही क्रोधित होंगे। उसने माँ को मनाया कि वह उचित समय देखकर पिताजी को पूरी बात बता दें।

इरा के पिताजी जब खाना खा चुके तब उसकी माँ बोली—'आज इरा की बुद्धिमानी से हम कई हजार के नुकसान से बच गए।'

'कैसे?' पिताजी ने उत्सुकता से पूछा।

माँ ने इरा द्वारा लैटर बक्स में हार डालने की पूरी घटना सुनाते हुए कहा—'सुबह के लिए आपका काम बढ़ गया। ऑफिस जाने से पहले आपको डाकघर जाना पड़ेगा।'

सुबह दस बजे ही इरा को लेकर उसके माता-पिता डाकघर पहुँचे। उन्होंने डाकपाल महोदय को रात की पूरी घटना सुनाई। उन्होंने एक व्यक्ति को चाबी देकर उनके साथ भेजा। लैटर बक्स में रूमाल में बँधा हार सुरक्षित पड़ा था, उसे पाकर सभी को बहुत प्रसन्नता हुई। इरा के पिताजी मिठाई लेकर पुनः वापस डाकघर पहुँचे और सभी कर्मचारियों को मिठाई खिलाई।

इरा ने प्रतिज्ञा की कि अब वह गहनों के मोह में न पड़ेगी और विशेष रूप से सोने के आभूषण पहनकर मुसीबत में नहीं पड़ेगी और ना ही कभी अकेली असमय कहीं जाएगी। माँ और पिताजी रात में उसे अकेले कहीं आने-जाने के लिए क्यों मना करते हैं, यह बात अब उसकी समझ में अच्छी तरह आ गई थी।



सूझबूझ

गौरी अपने चार वर्ष के छोटे भाई गौरव के साथ स्कूल से लौट रही थी। आज उनका रिक्शे वाला नहीं आया था। उसकी प्रतीक्षा के बाद बच्चे अपने घरों की ओर पैदल ही चल पड़े थे। सभी के साथ अपने भाई का हाथ थामे गौरी भी निकल पड़ी। अभी वे थोड़ी दूर ही चले होंगे कि हलकी फुहारें पड़नी प्रारंभ हो गईं। अँधेरा छाने लगा। गौरी समझ गई कि तेजी से बरसा होने वाली है। सभी घरों की ओर जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाने लगे।

'चलो ! मैं तुम्हें छोटे रास्ते से ले चलती हूँ।' एक बालिका बोली और सभी उसके पीछे तेजी से बढ़ने लगे। सहसा ही एक दुर्घटना घटी। रास्ते में पड़े हुए केले के छिलके पर गौरव का पैर पड़ा और धड़ाम से पास बहते नाले में जा पड़ा। नाला ५-६ फीट गहरा था, उसमें पानी भी भरा था। गौरव उसमें डुबकी लगाने लगा। गौरी ने आव देखा न ताव, वह झट से नाले में कूद पड़ी। उसने भाई की कमीज का कालर पकड़ा और उसे अपनी ओर खींचा। गौरी तैरना नहीं जानती थी, पर उसने साहस न छोड़ा। वह अपने भाई को सँभालकर नाले से बाहर ले ही आई। तब तक वहाँ रास्ते चलते लोगों की भीड़ भी जुट गई थी। सभी गौरी के साहस की प्रशंसा कर रहे थे। यदि उसने तनिक भी देर की होती तो उसका भाई निश्चित ही नाले के तल तक पहुँच गया होता और पानी के प्रवाह के साथ दूर पहुँच चुका होता, तब उसे तलाश करना बहुत कठिन होता।

नन्हे गौरव को क्या पता कि वह किस संकट से बचा है? वह तो लगातार जोर-जोर से रोए जा रहा था। राहगीरों ने एक रिक्शा रुकाकर उसमें कुछ बच्चों को बिठा दिया।

बच्चों को स्कूल से आने में देर हो गई थी, अतएव गौरी की माँ चिंतित दरवाजे पर ही खड़ी थीं। कीचड़ में लिपे-पुते बच्चों को देखकर वे विस्मित रह गईं। वे कुछ पूछतीं इससे पूर्व ही साथ के बच्चों ने पूरी बात बता दी। उन्होंने भगवान को लाख-लाख धन्यवाद दिया। आज उनके दोनों बच्चे मरने से बाल-बाल बचे थे। उन्होंने गौरी को बहुत प्यार किया, बहुत शाबाशी दी। उसी के कारण आज गौरव के प्राणों की रक्षा हुई थी। गौरी छोटी थी तो क्या हुआ? उसने विवेक और साहस से कार्य किया था। धैर्य, साहस और प्रत्युत्पन्नमति से कार्य करने पर बड़े-बड़े संकट से भी उबरा जा सकता है। इन्हें अपनाकर छोटे बालक भी वह कार्य कर दिखाते हैं, जिन्हें सहसा बड़े भी नहीं कर पाते।



सबकी भलाई, अपनी भलाई

बोर्ड की परीक्षाएँ चल रही थीं। कल गणित का और अंतिम प्रश्न पत्र होगा। ऋतु रात में गहरी नींद नहीं सो पाई थी। उसके मन में धुकधुकी लगी हुई थी। उसे रात में उठकर पढ़ना था। माँ उसे उठाने के लिए आती, पर उस दिन चिंता के कारण ऋतु की आँख अपने आप खुल गईं। उसने घड़ी देखी तो रात के दो बजे थे। ऋतु आलस्य छोड़कर उठ बैठी और मुँह धोने नीचे स्नानगृह की ओर चल दी। गरमी के कारण वह और उसका छोटा भाई दोनों छत पर सोए हुए थे।

नीचे जाने पर ऋतु ने देखा कि माँ के कमरे की बत्ती जल रही है। 'माँ शायद मुझे उठाने आती होंगी, उन्हें बतला दूँ कि मैं उठ गई हूँ, जिससे उन्हें ऊपर जाकर परेशान न होना पड़े।' ऋतु ने सोचा। उसने पाया कि माँ के कमरे का दरवाजा खुला पड़ा है। 'गरमी के कारण खुला रखा होगा।' ऋतु ने सोचा। परंतु जैसे ही वह तनिक

आगे बढ़ी तो वह ठिठक गई। अंदर का दृश्य देखकर तो वह जोर से काँपने लगी। माँ और पिताजी के हाथ पैर बँधे हुए थे। वे जमीन पर पड़े हुए थे। दो चोर कमरे में घुसे थे। अलमारियाँ खुली पड़ी थीं। एक ओर खाली हेंगरों का ढेर लगा था, तो दूसरी ओर माँ की कीमती साड़ियों और पिताजी के कपड़ों का। चोर अब अलमारी का वह खाना तोड़ने की कोशिश कर रहे थे, जिसमें नकदी और आभूषण रखे थे। एक-एक करके जिन वस्तुओं को बड़े परिश्रम से एकत्रित किया गया था, उन्हें यों लुटता देखकर ऋतु आवेश से कसमसा उठी। उसका डर भी भाग गया, वह दौड़कर ऊपर गई और सोते हुए भाई को जल्दी से उठाकर पूरी बात बताई। दोनों भाई-बहनों ने अपनी छत पर सोए हुए पड़ोसी को उठाया। उनके यहाँ से पुलिस को फोन किया और तुरंत आने की प्रार्थना की, परंतु वे जानते थे कि पुलिस के आने में देर भी हो सकती है और उपाय अविलंब करना है। कहीं ऐसा न हो कि लुटेरे सामान लेकर ही भाग जाएँ। अतएव उन्होंने चार-पाँच पड़ोसियों को और उठा लिया। दो के पास बंदूकें थीं, चाहते तो वे सभी मिलकर लुटेरों को घेर सकते थे। परंतु समस्या यह थी कि ऋतु के माता-पिता भी उसी कमरे में थे। कहीं ऐसा न हो कि वे क्रोध में उन पर ही वार करें। अतएव वे छत के जीने से नीचे घर में उतर गए और अलग-अलग स्थानों पर छिप गए। चार व्यक्ति उस कमरे के बाहर थे, जिसमें ऋतु के माता-पिता सोए हुए थे। गठरी बाँधकर चोर जैसे ही कमरे से बाहर निकले उन्होंने उन्हें दबोच लिया। इस अचानक आक्रमण से चोर हड़बड़ा गए। तब तक दूर खड़े दो अन्य व्यक्ति भी वहाँ आ चुके थे। उन्होंने चोरों से गठरियाँ छीन ली। सभी ने मिलकर चोरों के हाथ-पैर कसकर बाँध दिए। थोड़ी देर में पुलिस भी आ पहुँची और उन्हें थाने में ले गई, वहाँ उनकी खूब पिटाई हुई। तब यह रहस्य खुला कि ऋतु के यहाँ जो नई महरी काम पर लगी है, उसका चोरी में हाथ है। उसने दो मास में ही पूरे घर की खोज-खबर ले ली थी

और यह पता कर लिया था कि कहाँ, कैसा और कितना माल है? घर में कितने सदस्य हैं? कहाँ सोते हैं? यह अता-पता भी उसने ही दिया था। चोरी वाले दिन ही ऋतु और उसके भाई को मामाजी के यहाँ भोपाल जाना था, परंतु परीक्षा की स्कीम बदल जाने के कारण उस दिन रुकना पड़ा था। यह बात महरी को पता न थी। अतएव चोर घर में केवल दो ही व्यक्ति समझ रहे थे। वैसे भी ऋतु और उसके भाई छत पर सोए थे।

ऋतु के पिताजी ने साहस और विवेक के लिए ऋतु की प्रशंसा तो की ही, साथ ही उन्होंने पड़ोसियों को भी बहुत-बहुत धन्यवाद दिया, जिन्होंने संकट की घड़ी में उनकी सहायता की थी। 'वह तो आपके प्रयासों तथा प्रेरणा का फल है।' एक युवक ने मुस्कराते हुए उन्हें उत्तर दिया। वस्तुतः ऋतु के पिताजी बड़े ही विवेकशील, मिलनसार और परोपकारी किस्म के थे। जब वे इस मकान में रहने के लिए आए तो उन्होंने पाया कि पड़ोसी एकदूसरे से कटे-कटे रहते हैं, जैसा कि महानगरों का सामान्य रिवाज है। उन्होंने सभी से परिचय किया, त्योहारों पर एकदूसरे से मिलने-जुलने जाने की परंपरा डाली। उन्होंने मोहल्ले की एक समिति बनाई, जिसमें प्रत्येक घर में से एक सदस्य था। हर मास उनकी बैठक होती थी, जिसमें वे किसी की कोई समस्या होती थी, उस पर विचार करते थे और सफाई, विकास आदि के कार्यक्रम बनाते थे। इसका परिणाम यह हुआ था कि गंदा मोहल्ला साफ रहने लगा था। बरसा से गड्ढों में पानी भर जाता था तो सभी ने मिल-जुलकर चार ट्रक मिट्टी डलवा दी। एकदूसरे के सुख-दुःख में सभी शामिल होते थे। दो पड़ोसियों में किसी कारण मनमुटाव होता, बोल-चाल बंद हो जाती तो ऋतु के पिताजी उनमें समझौता कराने का प्रयास करते। एक-दो बार मोहल्ले में चोरों ने चोरी का प्रयास किया था तो ऋतु के पिताजी खबर पाते ही दौड़े चले गए थे और समय पर उन्होंने सहायता दी थी। अपने इन सब गुणों के कारण वे

लोकप्रिय थे और सभी उनका सम्मान करते थे। सच है कि अपने गुणों और अच्छे व्यवहार के कारण ही व्यक्ति दूसरों से सम्मान तथा सुरक्षा पाता है।



मित्रता की आड़ में

नया छात्र ललित सभी के आकर्षण का केंद्र बना हुआ था। बहुत ही मिलनसार, खुशमिजाज और बातूनी था। वह साथियों पर खूब रुपए खरच करता था। कभी उन्हें कैंटीन में ले जाता तो कभी कोई उपहार लाकर देता। दूसरे बच्चे उससे मना करते, पर वह किसी की बात मानता ही न था। यही कारण था कि थोड़े ही समय में उसके अनेक मित्र बन गए थे। प्रवीण भी उसका घनिष्ठ मित्र बन गया था।

एक दिन स्कूल से जल्दी छुट्टी हो गई। ललित ने प्रवीण से बहुत आग्रह किया कि वह उसके घर चले। साथ ही यह भी समझा दिया कि अपने घर तो वह प्रतिदिन के समय ही पहुँच जाएगा। बहुत कहने से प्रवीण ने उसकी बात मान ली और साथ चल पड़ा। ललित साइकिल से जाता था, उसने प्रवीण को अपने पीछे ही बैठा लिया। उसकी लच्छेदार बातों में प्रवीण को आसपास का भी कुछ ध्यान न रहा, पर जब ललित सुनसान जंगल में चलने लगा तो प्रवीण चौंका। वह पूछ बैठा—'कहाँ है तुम्हारा घर? किस रास्ते से जा रहे हो?'

'सिविल लाइंस', इस रास्ते से घर पास पड़ता है। कभी-कभी इधर से भी चला जाता हूँ। ललित कहने लगा।

उस रास्ते पर कोई भी आदमी दिखाई नहीं देता था। सहसा ही प्रवीण को ध्यान आया कि पिछले चार-पाँच महीनों में स्कूल के चार लड़कों का अपहरण हो चुका है। उनका आज तक

कोई पता नहीं है। माँ ने उसे सख्त चेतावनी दी थी कि वह सीधा घर आए। यदि इस जंगल से कोई उसे उठा ले गया तो माँ और पिताजी पर क्या बीतेगी ? माँ ने उसे यह भी समझा दिया था कि चोर जिन बच्चों को उठाकर ले जाते हैं, उनकी कैसी दुर्दशा की जाती है ? प्रवीण यह सब सोचकर घबरा गया। उसने ललित को देखा। वह अपनी धुन में मस्त बोल रहा था और साइकिल चला रहा था। 'यदि इसके सामने अपनी आशंका रखूँगा तो यह मजाक बनाएगा।' प्रवीण ने सोचा और एकदम ही साइकिल से उतर पड़ा।

'क्या हुआ ?' ललित ने साइकिल रोककर पूछा।

'मैं तो भूल ही गया था। आज तो मुझे जल्दी घर पहुँचना है। यदि नहीं पहुँचूँगा तो माँ मुझे बुलाने किसी को स्कूल भेजेंगी।' प्रवीण ने कहा। फिर उसने विस्तार से कारण बताया कि सुबह-सुबह स्कूल आते समय वह अपने मामाजी के सूटकेस की चाबी छिपाकर रख आया था। उनसे कहकर आया था कि वह स्कूल से आकर देगा और जब वह आएगा तभी वे जाएँगे। आज शाम को ही उनको जाना है। यदि वह नहीं पहुँचा तो बहुत ही परेशानी हो जाएगी। माँ तुरंत किसी को स्कूल भेजेंगी। वहाँ जब पता लगेगा कि छुट्टी हो गई और उनका बेटा वहाँ नहीं है तो तुरंत पुलिस को खबर करेंगी। पुलिस अधीक्षक हमारे घर के पास ही रहते हैं, अतएव तेजी से खोज आरंभ हो जाएगी।

'मैं तो तेरी बातों में ही भूल गया था।' प्रवीण बोला।

अब ललित ने बिना एक शब्द भी बोले साइकिल वापस उसी दिशा में मोड़ ली जिधर से वे आए थे। प्रवीण ने बहुत कहा कि वह पैदल चला जाएगा, तुम अपने घर चले जाओ, पर वह माना नहीं। 'उधर से दूसरे रास्ते से निकल जाऊँगा।' ऐसा कहने लगा। रास्ते में ललित प्रवीण से बोला नहीं।

प्रवीण ने सोचा कि आधे रास्ते से लौटने के कारण नाराज है। 'मैं फिर किसी दिन तुम्हारे घर जरूर चलूँगा।' उसने ललित से ऐसा कहकर उसे प्रसन्न करना चाहा, परंतु वह चुप ही रहा। न ही उसने प्रवीण से यह आग्रह ही किया कि बाद में फिर कभी उसके घर चलना पड़ेगा। मित्र की उदासी देखकर प्रवीण को एक बार लगा कि बेकार ही उसने बहाना किया। वह उसके घर चला ही जाता। पता नहीं क्यों प्रवीण का अंतर्मन कह रहा था कि उसने ठीक ही किया।

घर जाकर प्रवीण ने माँ को सारी बातें बताईं। 'समय पर तुमने बुद्धिमानी से काम किया है।' ऐसा कहकर उसे शाबाशी दी। साथ ही यह भी समझाया कि इस प्रकार किसी अपरिचित लड़के के साथ उसके घर जाना नहीं चाहिए।

'अपरिचित कैसे माँ?' प्रवीण ने पूछा।

'तुम स्वयं ही कह रहे हो कि वह तुम्हारे स्कूल में नया आया है। तुम्हें पता नहीं कि उसका घर कहाँ है? उसके पिता क्या करते हैं? स्कूल में तुम उसे जितना जानते हो उसे सही और पूरा परिचय नहीं कह सकते। आगे से अच्छी तरह याद रखना कि तुम किसी भी नए लड़के के घर जाओगे तो हमें उसका पूरा पता, पिता का नाम, व्यवसाय आदि सभी पहले से बता दोगे, जिससे कि हम उसका पता लगा सकें। किसी अपरिचित के साथ यों ही चले जाना खतरे से खाली नहीं।' माँ बोली।

'माँ तो बेकार की शंकाएँ करती हैं। मैं उनका एकमात्र बच्चा हूँ न, इसलिए शायद कुछ अधिक ही सुरक्षा बरतती हैं।' प्रवीण मन ही मन यह सोचकर मुस्करा उठा।

बात आई गई हो गई। उस दिन के बाद ललित प्रवीण से कुछ खिंचा-खिंचा सा रहने लगा। धीरे-धीरे प्रवीण से उसकी मित्रता कम हो गई। अब दूसरे लड़के उसके मित्र बन गए थे। प्रवीण मन ही मन चाहता था कि ललित उसका दोस्त बना रहे, परंतु अपनी ओर से उसके पीछे लगना, उसे अपने स्वाभिमान के विरुद्ध लगा।

अतएव वह उसके साथ तो न रहता, पर उसके विषय में पूरी जानकारी रखता।

स्कूल से हर डेढ़ दो महीने में एक लड़का गायब हो रहा था। अभिभावक तो परेशान थे ही, स्कूल के प्राध्यापक और शिक्षक भी कम परेशान न थे। स्कूल की बदनामी हो रही थी। बच्चों के अपहरण में स्कूल से ही संबंधित किसी का हाथ है। ऐसा निश्चित सा लग रहा था, क्योंकि यदि शहर में कोई गिरोह काम कर रहा होता तो और भी स्कूलों के बच्चे चुराए जाते, केवल उसी के नहीं।

प्रधानाचार्य के कहने पर पुलिस ने पूरा मामला अपने हाथ में ले लिया था। सादे कपड़ों में खुफिया पुलिस के अनेक व्यक्तियों ने स्कूल को चारों ही तरफ से घेर लिया था और वे कड़ाई से वहाँ की निगरानी रख रहे थे।

प्रवीण ने खुफिया पुलिस को एक महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया था। वह सूत्र यह था कि खोए हुए बच्चों में से अधिकांश ऐसे थे जो ललित के साथ रहते थे। दूसरे बच्चों से बात करने पर भी इस तथ्य की पुष्टि हुई थी। बस फिर क्या था, खुफिया पुलिस ने गुप्त रूप से ललित पर निगरानी रखना, उसका पीछा करना आरंभ कर दिया था। जल्दी ही जो सचाई सामने आई उससे स्कूल के शिक्षक और बच्चे सभी चौंक पड़े। ललित का बच्चों का अपहरण करने वाले गिरोह के साथ संबंध था। वह स्कूल के लड़कों पर पैसा खरच करके उन्हें घुमाता-फिराता और उनकी सहायता करता था। विश्वास जम जाने पर वह उन्हें घर ले जाने या घुमाने के बहाने अपने साथ ले जाता और चुपचाप से अपहरणकर्त्ताओं को सौंप देता। तेरह वर्ष का यह किशोर बदले में पाता था रुपए और नशीली चीजें। पुलिस ने रंगे हाथ ललित को गिरफ्तार किया था। उसने जल्दी ही सचाई स्वीकार कर ली और पूरी बात उगल दी।

ललित का संबंध अपराधियों के एक बड़े गिरोह से था, जिसे वह स्वयं भी न जानता था। वह उनके हाथ का खिलौना बन गया

था, उन्होंने उसे नशीली चीजों के सेवन करने का अभ्यस्त बना दिया था। पुलिस ने ललित को अपने विश्वास में लिया और उसे सजा न देने का अश्वासन देकर अपनी ओर मिला लिया। फिर उसकी सहायता से पुलिस ने उस गिरोह के अनेक सदस्यों को गिरफ्तार किया, परिणाम स्वरूप जल्दी ही उनके कुकृत्यों का भंडा फूट गया। वे बच्चों को चुराकर उन्हें लूला-लँगड़ा, अंधा आदि बनाकर देश के विभिन्न भागों में भेजकर उनसे भीख मँगवाते थे या फिर कुछ बच्चों को जेबकट आदि बनाकर उनसे पैसा कमवाते थे, यही नहीं और भी बहुत से समाज विरोधी कार्य करते थे, जिनमें बच्चों को लगाते थे। ललित तो यह सब जानकर ही भौचक्का रह गया, उसकी अंतरात्मा धिक्कारने लगी। उसने आत्महत्या का भी प्रयास किया, पर पुलिस ने उसे बचा लिया और बाल सुधारगृह भेज दिया। 

साहसी बालक

छोटी सी बालिका मोनालिया कंधे पर बस्ता लटकाए स्कूल जा रही थी। वह अपनी धुन में मस्त थी, सड़क पर यातायात बहुत था। वह फुटपाथ पर चल रही थी। आज उसकी सहेलियाँ नहीं आईं थीं, अतएव वह अकेली ही तेजी से कदम बढ़ा रही थी। सहसा ही उसकी निगाह सड़क पार करते एक अंधे बालक पर गई। वह सड़क पार करना चाह रहा था, परंतु निरंतर ही कारें आ-जा रही थीं। 'ओह बेचारा कैसे पार कर पाएगा?' मोनालिया ने सोचा। उसके मन में उस बालक को देखकर बहुत ही सहानुभूति जगी। 'मैं इसे सड़क पार करा देती हूँ।' उसने सोचा। मोनालिया ने उसकी ओर कदम बढ़ाए ही थे कि उसने देखा कि वह बालक चलती हुई दो कारों के बीच में फँस गया है और किसी भी पल कुचल सकता है। मोनालिया ने तेजी से अपना बस्ता फुटपाथ पर पटका और बिजली की सी फुरती से दौड़कर अंधे बालक का हाथ पकड़कर फुटपाथ पर खींच लाई।

'क्या है, क्या है?' अंधा बालक हड़बड़ाकर बोला।

'यमराज के यहाँ जा रहे थे, बच गए।' मोनालिया बोली।

तब तक इस पाँच वर्ष की बालिका के साहस को देखकर रास्ते चलते चार-छह आदमी भी वहाँ इकट्ठे हो गए थे। मोनालिया को चोट नहीं लगी, देखकर वे प्रसन्न हो गए थे। मोनालिया ने जो काम किया था, उसे करने का सहसा अन्य बड़े-बड़े भी साहस नहीं कर पाते। वे उस बालक को समझा रहे थे कि किस प्रकार एक छोटी सी बालिका ने आज उसके प्राणों की रक्षा की है।

'तब तो तुम घर चलो, मेरी माँ से मिलकर आओ।' वह बालक बोला।

मोनालिया ने उसे समझाया कि उसे स्कूल को देर हो जाएगी, परंतु वह बालक था कि उसकी एक भी बात नहीं सुन रहा था और अपनी ही रट लगाए था।

'कहाँ है तुम्हारा घर?' मोनालिया ने कहा।

'बहुत ही पास है।' बालक बोला। अंततः वह मोनालिया को अपने घर ले ही गया।

बालक ने माँ को पूरी घटना बताई तो उन्होंने मोनालिया को हृदय से लगा लिया। उसके कारण ही आज उनके ग्यारह वर्ष के अंधे बालक की जान बची थी। उन्होंने मोनालिया से उसके घर का पता पूछा और कुछ टॉफी देकर स्कूल के लिए भेज दिया। बाद में बालक की माँ ने मोनालिया के लिए सुंदर कपड़े, उपहार आदि खरीदे और उसके स्कूल से लौटने से पहले ही वे बालक शिव को लेकर उसके घर पहुँच गईं। वहाँ उन्होंने मोनालिया की माँ को पूरी बात बताई। अपनी बेटी की बहादुरी की बात सुनकर उनका मस्तक गर्व से उन्नत हो गया। उन्होंने बताया कि किस प्रकार मोनालिया को दूसरों की सहायता करना अच्छा लगता है। अपंग या अंगहीन बालकों के साथ तो उसकी विशेष रूप से सहानुभूति है। शिव की माँ समझ गई कि यह इस माता के प्रशिक्षण का ही

परिणाम है, अन्यथा प्रायः बालक ऐसे बच्चों का मजाक ही बनाया करते हैं।

इतने में मोनालिया भी स्कूल से आ गई। शिव की माँ ने उसे एक राखी देते हुए कहा—'लो बेटी ! भाई के राखी बाँधो। अब इसका यह जीवन तुम्हारी ही देन है।'

इसके बाद उन्होंने मोनालिया को मिठाई और अनेक उपहार दिए। उसकी माँ ने बहुत मना भी किया, पर वे न मानीं। आँखों में आँसू भर कर बोलीं—'आज मुझसे मना मत करो।'

शिव को एक प्यारी सी बहन मिल गई। दोनों में जल्दी ही घनिष्ठता बढ़ गई। स्कूल से लौटने के बाद जब तक दोनों एकदूसरे से मिल नहीं लेते, उन्हें चैन नहीं पड़ता। मोनालिया को पता लगा कि शिव जन्मांध नहीं है। बहुत तेज बुखार के कारण तीन वर्ष पूर्व उसकी आँखों की रोशनी जाती रही, जो अनेक उपचारों से भी वापस न लौटी। मोनालिया उसे स्नेहपूर्वक बहुत सी बातें बताती है, उसकी बातें सुनकर वह इस संसार की बहुत सी कल्पना कर पाता है। मोनालिया के रूप में उसे अपना दुःख-दरद बाँटने वाला प्यारा साथी मिल गया है। वह प्रायः उससे हँसते हुए कहता है—'मोनी! तुम जैसी प्यारी बहन देने के लिए ही भगवान ने मुझे वह मारने का नाटक रचा था।'

शिवा और अन्य व्यक्तियों की संस्तुति पर मोनालिया को इस वीरता भरे कार्य के लिए उपहार और प्रशस्ति पत्र मिले।

झूठा मनोरंजन

प्रमोद एक कस्बे में रहता था, उसकी बहुत बड़ी हवेली थी। उसका परिवार वहाँ का सबसे धनी परिवार माना जाता था। कई पीढ़ियों से लक्ष्मी की उनके परिवार पर कृपादृष्टि थी। परिश्रम, सच्चरित्रता, नैतिकता, धार्मिकता यह उस परिवार के परंपरागत गुण थे। इस कारण उसके पिता बड़े ही लोकप्रिय थे। अनेक व्यक्तियों

को यह अच्छा न लगता था, वे मन ही मन उनसे चिढ़ते थे और उनके अशुभ की कामना किया करते थे।

एक बार प्रमोद के पिता को डाकूदल का एक पत्र मिला, जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे अमावस्या की रात्रि को उनके यहाँ डाका डालेंगे। यदि पुलिस को सूचित किया गया तो अच्छा न होगा और उनके परिवार के सभी सदस्यों को मार दिया जाएगा। ऐसा पत्र पाकर प्रमोद के पिता का चिंताग्रस्त होना स्वाभाविक था। वे पत्र को लेकर तुरंत थानेदार के पास गए, थानेदार उनका घनिष्ठ मित्र था। उन्होंने उन्हें ढाढस बँधाया और सुरक्षा का पूरा-पूरा आश्वासन दिया।

थानेदार ने तुरंत ही दो सिपाहियों को प्रमोद के घर की सुरक्षा के लिए नियुक्त कर दिया। अमावस्या से एक दिन पूर्व सादे कपड़ों में अनेक पुलिस कर्मचारियों ने उनके घर को घेर लिया। थानेदार तथा अन्य अफसर स्वयं डाकुओं से मुठभेड़ करने के लिए बहुत इच्छुक थे, अतएव अमावस्या के दिन प्रातः से ही वे वहाँ सादे कपड़ों में छिपे हुए थे। पूरा दिन और पूरी रात प्रतीक्षा करते-करते बीती। हवेली के बाहर पुलिस दल सादा कपड़ों में गश्त लगाता बेचैनी से डाकुओं की प्रतीक्षा कर रहा था। तो हवेली के अंदर परिवार के किसी भी सदस्य की आँखों में नींद न थी। पूरे घर में तेज प्रकाश था और सभी बेचैन से अंदर-बाहर घूम रहे थे। रात बीती, प्रभात हुआ, सभी ने चैन की साँस ली। 'डाकुओं ने अपना कार्यक्रम बदल दिया है।' ऐसा सभी ने सोचा। दो को छोड़कर शेष पुलिस वाले भी वहाँ से चले गए। घर के सभी सदस्य भी खा-पीकर ऊँघने लगे। वे रात भर के जगे और थके थे, अतएव जल्दी ही गहरी नींद में सो गए।

सायंकाल के समय प्रमोद की माँ का ध्यान सहसा ही छोटे कमरे की ओर गया। वह कमरा वस्तुतः पालतू पशुओं के लिए ही बनवाया गया था और प्रायः खाली पड़ा रहता था। उस ओर कुछ अँधेरा भी रहता था। कमरे की किबाड़ें बंद देखकर प्रमोद की माँ चौंक गईं। उन्होंने पास जाकर किबाड़ों को धक्का दिया, वे अंदर से बंद थीं, न खुलीं और बदले

में कुछ व्यक्तियों के अस्पष्ट से स्वर सुनाई देने लगे। प्रमोद की माँ उलटे पाँव लौट आईं और तुरंत प्रमोद के पिता के पास भागी चली गईं। उनकी साँस धौंकनी की तरह चल रही थीं। उखड़े स्वर में हाँफते हुए वे कहने लगीं—'डाकू आ गए।' 'कहाँ-किधर?' प्रमोद के पिता ने आश्चर्य से पूछा। उन्होंने उँगली से उस कमरे की ओर इशारा कर दिया। पिता ने बड़े लड़के को तुरंत पुलिस को सूचित करने के लिए भेज दिया और स्वयं बंदूक लेकर उधर दौड़े चले गए। किबाड़ खटखटाने पर पहले की भाँति ही कुछ व्यक्तियों की अस्पष्ट सी ध्वनि सुनाई दी। तब तक थानेदार भी अपने सिपाहियों के साथ आ गए। उन्होंने कड़कती आवाज में कहा—'दरवाजा खोलो, नहीं तो किवाड़ तोड़ते हैं।' उत्तर में अंदर से बंदूक चलने की आवाज आई। अब थानेदार से न रहा गया, वे जोर से बोले—'डरपोकों की तरह अंदर क्यों छिपे हो? साहस हो तो बाहर निकलो और दो-दो हाथ करो।' उत्तर में फिर बंदूक चलने की आवाज आई। अब थानेदार गुस्से से चिल्लाए कि दो मिनिट के अंदर यदि दरवाजा नहीं खोलते तो हम इसे तोड़ते हैं। दो-तीन मिनिट तक भी दरवाजा न खुला तो पुलिस वाले उसे तोड़ने की कोशिश करने लगे। तभी अंदर से भयभीत सा स्वर आया—'पिताजी-पिताजी।' सभी चौंक उठे। 'अरे प्रमोद अंदर है क्या?' प्रमोद के पिता घबराए हुए बोले। उन्होंने गरदन घुमाकर आसपास देखा, प्रमोद के अतिरिक्त घर के सभी सदस्य उपस्थित थे। अब सभी के सामने यह स्थिति सहसा ही स्पष्ट हो गई कि अंदर डाकुओं ने प्रमोद को पकड़ रखा है। 'हे भगवान!' कहती हुई प्रमोद की माँ तो घबराहट के कारण वहीं बैठ गईं। थानेदार ने उन्हें ढाढस बँधाया—'सब ठीक होगा भाभीजी, आप बिलकुल भी न घबराएँ।' फिर उन्होंने ऊँची आवाज में कहा—'हम तुम्हारा कोई नुकसान नहीं करेंगे, दरवाजा खोलो।' थोड़ी देर में अचानक किबाड़ खुले और प्रमोद घबराया हुआ बाहर निकला। थानेदार ने तुरंत कुछ आदमियों के साथ आगे बढ़कर कमरे में तेज प्रकाश डाला। वे आश्चर्य से दंग रह गए, वहाँ तो कोई न था। उनकी दृष्टि रोशनदानों पर गई, सभी ठीक थे। अब

उन्होंने प्रमोद की ओर मुँह किया और कुछ पूछना ही चाहते थे कि उनके पैरों पर गिरते हुए बोला—'ताऊजी मुझे माफ कीजिए। मैं तो इन सभी के साहस को परख रहा था, वैसे भी आज पहली अप्रैल है न।'

थानेदार पलभर में ही सारी बात समझ गए। उसके सिर पर चपत लगाते हुए बोले—'बच गए बच्चू ! आज तो एकाध डंडा सिर पर पड़ ही जाता या गोली लग जाती तो सारी पहली अप्रैल ही निकल जाती।'

'खोदा पहाड़ निकली चुहिया' वाली बात हुई। प्रमोद के पिता को उस पर बहुत तेज गुस्सा आ रहा था, पर उस समय तो वे चुप रह गए। उन्होंने पुलिस दल को चाय-नाश्ता कराया और कहा—'सोचो तो सही! तुमने कितना दुस्साहस किया है। इस प्रकार से सभी घर वालों के हाथ पैर फुला देना क्या उचित है ? क्या यह मजाक का विषय था ? इस प्रकार यदि पुलिस वालों से मजाक करेंगे तो कल को क्या वे आने में आनाकानी नहीं करेंगे या फिर वे सही समय पर आएँगे ?'

प्रमोद सिर झुकाए चुपचाप सुनता रहा। 'सच मैंने बहुत बड़ी गलती की।' वह मन ही मन कह रहा था।

पिताजी फिर कहने लगे—'यह तुम्हारा साहस नहीं दुस्साहस है। अपने श्रम, शक्ति और चिंतन को निरर्थक, अनुपयोगी, दूसरों को धोखा देने, छलने और मूर्ख बनाने वाले कार्यों में व्यर्थ न करो। यदि कर सको तो ऐसे कार्य करो, जिससे औरों का हित हो और उन्हें कुछ प्रेरणा मिले।'

संगति का असर

गौरव अपने माता-पिता का इकलौता पुत्र था। उसके माता-पिता उसे बहुत प्यार करते थे। उसकी हर इच्छा पूरी करते थे। उन्होंने उसे बड़ी लगन से पाला था। बचपन से ही अच्छी बातें भी सिखाई थीं। उसमें अच्छे गुण डाले थे। वह प्रतिदिन सुबह उठकर माता-पिता को प्रणाम करता था। उनका कहना मानता था। सच बोलता था। अपनी बड़ी बहनों का काम करता था। जब वह लगभग तीन वर्ष का हुआ तो उसकी बहन ने उसे घर पर पढ़ाना

शुरू किया। उसे अच्छी कविताएँ सिखाईं। गिनती-पहाड़े आदि भी सिखाए। जब घर में कोई मेहमान आता तो सभी गौरव से कविता सुनाने को कहते। गौरव अपनी तोतली भाषा में बड़े उत्साह से उन्हें सुनाता। घर में जो भी आता, गौरव से बड़ा खुश होकर जाता।

गौरव जब चार वर्ष का हुआ तो उसके पिताजी ने उसे स्कूल में पढ़ने भेज दिया। वह भी खुशी-खुशी बस्ता लेकर पढ़ने जाने लगा। अच्छे बच्चे ऐसा ही करते हैं। उन्हें पढ़ना अच्छा लगता है। वे स्कूल जाते समय रोते नहीं हैं।

शुरू-शुरू में गौरव का मन स्कूल में नहीं लगा। वह वहाँ जाता और चुपचाप बैठा रहता। कक्षा में ध्यान से पाठ सुनता रहता और धीरे-धीरे उसे वहाँ अच्छा लगने लगा। वह अपने आसपास के बच्चों से भी बोलता था। धीरे-धीरे उसके कुछ दोस्त भी बन गए। गौरव की सबसे ज्यादा दोस्ती दीपू, शालू और मनु से थी। दीपू, शालू और मनु में कुछ बुरी आदतें भी थीं। वे घर से बिना पूछे पैसे भी ले आते थे और स्कूल में खूब चीजें खाते थे। उनका मन पढ़ने में कम लगता था, खेलने में ज्यादा लगता था। कक्षा में पढ़ते समय वे अध्यापक की बातें पूरे ध्यान से नहीं सुनते थे। कभी-कभी आपस में बात भी करने लगते थे, पर गौरव तो छोटा बालक था, उसे पता नहीं था कि कौन अच्छा है, कौन बुरा?

गौरव की एक अध्यापिका उसके घर के पास रहती थीं। वे उसे बहुत समय से जानती थीं। उन्होंने उसे बहुत समझाया कि वह दीपू, शालू और मनु के साथ न रहे। उनमें बहुत सी गंदी आदतें हैं, पर गौरव न माना। तब अध्यापिका ने गौरव के पिताजी को सारी बातें बता दीं।

गौरव के पिताजी बड़े समझदार थे। वे उसे डाँटते नहीं थे, प्यार से सभी बातें समझाते थे। उन्होंने एक उपाय सोचा। गौरव को संतरे बहुत पसंद थे। उन्होंने गौरव के सामने लिफाफे से बड़े अच्छे-अच्छे सात-आठ संतरे निकाले। गौरव ने सोचा कि पिताजी मुझे जरूर संतरे देंगे। पिताजी ने उन्हें एक टोकरी में रखकर अलमारी में बंद कर दिया।

गौरव बोला—'पिताजी ! हम संतरा खाएँगे।'

पिताजी ने कहा—'अभी तो कच्चे हैं, परसों खाना।'

तीसरे दिन पिताजी ने गौरव से कहा—'अलमारी से टोकरी निकाल लाओ, सभी संतरे खाएँगे।'

गौरव दौड़कर अपनी बहन को भी बुला लाया। उसने बड़े उत्साह से टोकरी निकाली। पिताजी ने दोनों को एक-एक संतरा दिया, पर यह क्या? दोनों के संतरे सड़े निकले। तब पिताजी ने दोनों को दूसरे फल दिए। वे भी सड़े ही निकले। गौरव बोला—'पिताजी ! आप तो सारे ही संतरे सड़े हुए लाए हैं।'

पिताजी बोले—'नहीं गौरव! संतरा तो केवल एक ही खराब था।'

'फिर सारे कैसे निकल रहे हैं?' गौरव ने पूछा।

पिताजी ने समझाया कि एक खराब संतरे के साथ रहने से सारे अच्छे संतरे खराब हो गए। गौरव को बड़ा अचंभा हो रहा था कि क्या ऐसा भी हो सकता है?

पिताजी कह रहे थे—'गौरव! हम जैसी संगति में रहते हैं, वैसा प्रभाव हम पर भी पड़ता है। गंदे बच्चों के साथ रहने से अच्छे बच्चे भी गंदे बच्चे बन जाते हैं। अपने मित्र अच्छे बनाने चाहिए, इससे अच्छी आदतें बनती हैं। अब जरा तुम भी बताओ, तुम्हारे दोस्त कौन-कौन हैं?'

गौरव बोला—'दीपू, शालू, मनु हैं।'

पिताजी ने समझाया—'इनमें गंदी आदतें हैं, चुपचाप घर से पैसे ले जाते हैं। पढ़ने में भी मन नहीं लगाते हैं। पीयूष को देखो, वह अच्छा बच्चा है। मन लगाकर पढ़ता है। घर पर भी उसे सब प्यार करते हैं।'

गौरव की समझ में बात आ गई। उसने दीपू, शालू और मनु का साथ छोड़ दिया। पीयूष से दोस्ती कर ली।



युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा-३